२ अयं वै आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः। सः यत् जुहोति, यद् यजते तेन देवानां लोकः। अथ यद् अनुब्रूते तेन ऋषीणाम्। अथ यत् प्रजाम् इच्छते, यत् पितृभ्यो निपृणाति, तेन पितृणाम्। अथ यत् मनुष्यान वासयते यद् एभ्यो अशनं ददाति, तेन मनुष्याणाम्। अथ यथ पशुभ्यः तृणोदकं ददाति तेन पशूनाम्। यद् अस्य गृहेषु श्वापदाः वयांसि आ पिपीलिकाभ्यः उपजीवन्ति, तेन तेषां लोकः ॥ (शत-१४।४।२।२६)

अर्थ-यह निश्चय मनुष्य प्राणी अप्राणी सब भूतों का लोक (जीने का सहारा) है। वह (मनुष्य) जो हवन करता है जो यज्ञ करता है, उससे देवताओं का लोक है। अब जो वेदादि समस्त विद्यायें पढ़ता है, उससे ऋषियों कालोक है। अब जो पुत्री पुत्र आदि प्रजा को चाहता (विवाह करके प्रजा उत्पन्न करता) है, और जो माता पिता पितामह पितरों को यथा शक्ति अन्नजल से तृप्त करता है,उससे पितरो का लोक है। अब जो मनुष्यों (अतिथियों, विद्वानों) को घर में वास देता (रहने को जगह देता) है और जो उनको भोजन देता है उससे मनुष्यों का लोक है। अब जो पशुओं (गौ घोड़ा आदि घर के पशुओं) को घास पानी देता है, उससे पशुओं का लोक है। और जो इसके घरमें कुत्ते, मुर्गेमुर्गियाँ (कुक्कड़) कबूतरादि चिऊंटियां तक पलते हैं, उससे वह उनका लोक है ॥

३ यथा ह वै स्वाय लोकाय अरिष्टिम् इच्छेत

इस प्रसिद्ध ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याययज्ञ) के निश्चय दो हैं जो शरीर अपवित्र होना और जो देश (जगह) ोना ।

एवं विद्वान् महारात्रे उषसि उदिते व्रजन् तिष्ठन् शयानः आरण्ये ग्रामे वा यावत्तरसं स्वाध्यायम् सर्वान लोकान जयति, सर्वान् लोकान् अनृणो रति ॥ (तै० आ० २।१५)

इस प्रकार अनध्याय को जानता हुआ रात्रि के मध्य ाल (प्रातः काल) में अथवा सूर्य्य के उदय काल में आ, खड़ा हुआ, बैठा हुआ, अथवा लेटा हुआ, बन में अथवा गाओं में यथाशक्ति स्वाध्याय करता है, वह ों को जीत लेता है। और सब लोकों में उऋण हुआ है।

पहत पाप्मा हि स्वाध्यायः। देव पवित्रं वै एतत। मनूत्सृजति अभागो वाचि भवति, अभागो नाके स्वाध्यायो अध्येतव्यः ॥ (तै० आ० २।१५)

र्थ—निःसन्देह सब पापों को नाश करने वाला स्वाध्याय है। निश्चय देवताओं के समान पवित्र करने वाला ाध्याय है। उस (स्वाध्याय) को जो फिर छोड़ देता र नियम से नहीं पढ़ता) है, वह वाणी (वाणी के में भाग (हिस्से) से रहित (न हिस्सेवाला) होता है वह

अर्थ—जैसे निश्चय प्रसिद्ध अपने शरीर के लिए हर एक अहानि (न नुकसान) की इच्छा करता (मेरी हानि न हो यह चाहता) है ऐसे ही ऐसा जानने वाले (प्राणी, अप्राणी सब भूतों का लोक मनुष्य है ऐसा जानने वाले) के लिए प्राणी अप्राणी सब भूत अहानि की इच्छा करते (इसकी हानि न हो, यह चाहते) हैं ॥

४ पञ्च वै एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते सतति सन्तिष्ठन्ते—देवयज्ञः, पितृयज्ञः, भूतयज्ञः मनुष्ययज्ञः ब्रह्म यज्ञः इति ॥ (तै० आ० २।१०)

अर्थ—पाँच निश्चय यह महायज्ञ हैं जो सदा (बिना नागा—हर दिन) आरम्भ किए जाते हैं, और सदा समाप्त किए जाते हैं। देवयज्ञ १, पितृयज्ञ २, भूतयज्ञ ३, मनुष्ययज्ञ चार और ब्रह्मयज्ञ पाँच (स्वाध्या यज्ञ) ये उनके नाम हैं।

५ यद् अग्नौ जुहोति, तद् देवयज्ञः, सन्तिष्ठते। यत् पितृभ्यः स्वधा करोति तत् पितृयज्ञः सन्तिष्ठते। यद् भूतेभ्यो: बलिं हरति, तद् भूतयज्ञः, सन्तिष्ठते। यद् ब्राह्मणेभ्यो अन्न ददाति, तत् मनुष्ययज्ञः सन्तिष्ठते यत् स्वाध्यायम् अधीयीत, तद् ब्रह्मयज्ञः सन्तिष्ठते ॥ (तै० आ० २।१०)

अर्थ—जो अग्नि में होमता है, उससे देवयज्ञ समाप्त होता है जो पितरों को अन्न जल देता है उससे पितृयज्ञ समाप्त होता है। जो भूतों (गौ, घोड़ा आदि घर के पशुओं) को घास पानी देता

दुःख रहित सुख में (मोक्ष में) भाग से रहित (न हिस्से वाल
होता है। इसलिए स्वाध्याय करे ॥

१४ एष पन्थाः, एतत् कर्म, एतद् ब्रह्म, एतत् सत्यम्
तस्मात् न प्रमाद्येत् तत् न अतीयात् ॥ (ऐ० आ० २।१।१)

अर्थ-यह (स्वाध्याय) है लोक सुख तथा परलोक सुख
प्राप्ती का मार्ग, यह है सब कर्तव्य कर्म्मों से मुख्य कर्तव्य कर्म
यह है। ब्रह्म की प्राप्ती का सबसे बड़ा साधन, यह है सत्य
आरूढ करने वाला सच्चासाधन, इसलिए स्वाध्याय करने
प्रमाद (जान बूझकर न करना) न करे, न उसको उलं
(उसमें नागा करे) ॥

१५ अत्र एते श्लोकाः भवन्ति-

अर्थ-यहां (स्वाध्याय के विषय में) ये श्लोक हैं-

१६ स्थाणुः अयं भारहारः किल अभूद्, अधीत्य वेदं न
विजानाति योऽर्थम् । यो अर्थज्ञः इत् सकलं भद्रम्

अर्थ -गदहा है यह भार उठाने वाला निःसन्देह, जो
वेद को (मन्त्र ब्राह्मण, उपनिषद और गीता को) पढ़कर अर्थ
को नहीं जानता है। जो अर्थ का जानने वाला है, वह निश्चय
पूरे कल्याण (लोक सुख) को प्राप्त होता है, वह ज्ञान (आत्म-
ज्ञान) से परे फेंके हुए पापों वाला हुआ दुःखरहित सुख (मोक्ष)
को प्राप्त होता है।

शेभ्य तपः तप्यते, यः स्वध्यायम् अधीते। तस्मात् स्वा-
ध्यायो अध्येतव्यः ॥ (शत०–११।५।१।४)

अर्थ–और यदि वह कदाचित निश्चय तैल लगाये हुआ अलंकार किया हुआ (अच्छे वस्त्रआभूषण पहरे हुआ), भोजनादि से अच्छी तरह तृप्त हुआ और सुखदाई (नरम) बिछौने पर लेटा हुआ स्वाध्याय करता है तो भी वह निःसन्देह शिर से लेकर नखों के अग्र तक तप तपता करता है जो स्वाध्याय करता है।। इस लिए स्वाध्याय करे ॥

१० यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददत् लोकं जयति, त्रिःतावन्तं जयति, भूयासं च अक्षय्यम्, यः स्वाध्यायम् अधीते। तस्मात् स्वाध्यायो अध्येतव्यः ॥

(शत० ११।५।६।२)

अर्थ–वह निःसन्देह धन से पूर्ण (भरी हुई) इस पृथिवी को देता हुआ (दान करता हुआ) जितने निश्चय लोक (फल) को जीतता (प्राप्त करता है) तीन बार उतने लोक को (उससे तिगुणे लोक को) जीतता है उससे भी बहुत अधिक और अक्षय लोक को जीतता है, जो स्वाध्याय करता है। इसलिए स्वाध्याय करे ॥

११ तस्य ह वै एतस्य यज्ञस्य द्वौ अनध्ययौ यद् आत्मा अशुचिः, यद् देशः ॥ (तै० आ० २।१५)

इस (पृथिवी) लोकका गृहपति है, वायु गृहपति है यह निश्चय एक कहते है। वह अन्तरिक्ष लोक का गृहपति है। वह (सूर्य) निश्चय गृहपति, है जो वह तपता (तप रहा) है। यह पति (स्वामी) और ऋतुए गृह इसलिए सूर्य गृहपति है।

८—अग्निः वसुभिः, सोमो रुद्रैः, इन्द्रो मरुद्भिः, वरुणः आदित्यैः, बृहस्पति विश्वैदेवैः एते ह तु एव ते विश्वेदेवाः ॥

(तै० स० ६।२।२) (शत० ३।४।२।१)

अर्थ—अग्नि वसुओ (वसु देवताओं) के साथ पृथिवी लोक में, चन्द्रमा रुद्रों के साथ और इन्द्र मरुतों के साथ आन्तरिक्ष लोक में वरुण आदित्यों के साथ और बृहस्पति विश्वदेवों के साथ [द्यु लोक में स्थित है] ये ही निश्चय प्रसिद्ध वे सब देवता है।

९—तद् इदम् अम्य नूक्त यजुषा—"अग्निः देवता, वातो देवता सूर्यो देवता, चन्द्रमाः देवता वसवो देवता रुद्राः देवता आदित्याः देवता मरुतो देवता, विश्वेदेवाः देवता बृहस्पतिः देवता इन्द्रो देवता वरुणो देवता।

अर्थ—वह यह कहा है यजुर्वेद के मन्त्र ने "अग्नि देवता है वायु देवता है सूर्य देवता है, चन्द्रमा देवता है, वसू देवता है रुद्र देवता है आदित्य देवता है मरुत देवता हैं, विश्वे देव देवता है बृहस्पति देवता है इन्द्र देवता है वरुण देवता है॥

१०—सर्वे वै विश्वेदेवा॥ (श० १।७।४।२२)

अर्थ—सब देवता निश्चय विश्वेदेव हैं॥

अर्थ–हे इन्द्र (परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा) आप और आपकी सब से अग्रणी ज्ञानशक्ति, दोनों, अपनी रक्षाओं (रक्षाविधियों) से हमारी शान्ती (दुःख निवृति) के लिए हो, हव्य पदार्थों (देवान्नों) के देने वाले, आप और आपकी वर्षा कर्म से अकाल आदि कष्टों की निवारण–शक्ति दोनों, हमारी शान्ति(दुःख निवृति) के लिये हो। आप और आपकी आह्लाद-कारिणी (हर्ष दायनी) शक्ति, दोनों, हमारी शान्ति (दुःख निवृती) के लिये हो, हमारी प्रजा के लिये रोगो की निवृती और भयो (डरों) की अप्राप्ति हो, आप और आपकी पोषण शक्ति दोनों भोग्य पदार्थों (अन्नों) की प्राप्ती के लिये किये गये उद्योगों में, हमारी शान्ति (दुःख निवृति) के लिये हो

१७–शं नो भगः शमु उ नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु उसन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः, शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु। (ऋ ७।३।५.२)

अर्थ–घर का ऐश्वर्य हमारी शान्ति के लिये हो, और एश्वर्य सम्बन्धी लोगों का प्रशंसावचन, हमारी शान्ति के लिये हो, बड़ी बुद्धि वाली स्त्री, हमारी शान्ति के लिये हो, और सब धन हमारी शक्ति के लिये हों। सत्य और जितेन्द्रियता का प्रशंसावचन हमारी शान्ति के लिये हो, बहुत रूपों से प्रसिद्ध कर्म फल दाता ईश्वर हमारी शान्ति के लिये हो।

१८–शं नो धाता शमु उ धर्ता नो अस्तु, शं न उरूची भवतु स्वधाभिः शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः, शं नो देवानां सुहावनी सन्तु (ऋ० ७।३ ५।३)

अर्थ–जो ज्ञानका उत्तम साधन और चिन्तन (स्मरण) शक्तिवाला है, और जिसमें अगाध धैर्य्य हैं।, जो सब प्राणियों में भीतर एक अमर ज्योती (प्रकाश) है।, जिसके विना कोई भी कर्म नही किया जाता, वह मेरा मन शुभसङ्कल्पवाला हो ॥३॥

७–येन इदं भूतं भुवनं भविष्यत्, परिगृहीतं अमृतेन सर्वम। येन यज्ञः तायते सप्तहोता, तन् मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ॥४॥ (यजु० ३४।४)

अर्थ–जिस अमर ज्योति ने यह सब भूत (अतीत) भविष्यत् और वर्तमान जगत् सब ओर से पकड़ा हुआ है।, और जो सात होता ओं (आत्माग्निमें) वाह्य विषयों की आहुति (देने वाली दो आंख दो कान दो नासिका और जिह्वा, इन सात इन्द्रियां) वाले शरीरयज्ञ को पूरा करता हैं।, वह मेरा मन शुभसङ्कल्पवाला हो ॥४॥

८–यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिताः रथनाभौ इवाराः यस्मिन चित्तं सर्वम् ओतं प्रजानां तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥ (यजु० ३४।५)

अर्थ–जिस मन में सब ऋचायें सब साम, जिसमें सब यजुर्मन्त्र रथ (रथचक्र) का नाभि में अरोंकीनाई ठहरे हुए है। ऋग्वेद आदि सब विद्याये जिसमें भरी हुई है) जिसमें प्राणियों का सब ज्ञान प्रोया हुआ है। वह मेरा मन शुद्ध संकल्प वाला है।

१७-यः तित्याज सखिविदं सखायं, न तस्य वाचि अपि भागो अस्ति। यद् ईं शृणोति अलकं शृणोति, नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ (ऋ० १०।७१।७)

अर्थ--जिस (मनुष्य) ने त्याग दिया है मित्रता के जानने वाले मित्र (स्वाध्याय) को, उसका वाणी में (वाणी के ऐश्वर्य) में कुछ भी भाग (हिस्सा) नहीं है। जो कुछ सुनता है व्यर्थ (निष्फल) सुनता है क्योंकि वह अच्छे कर्म के मार्ग को नहीं जानता है ॥

१८-उत त्वं सख्ये स्थिरपीतम् आहुः, न एनं हिन्वन्ति अपि वाजिनेषु। अधेन्वा चरति मायया एष, वाचं शुश्रुवान अफलाम् अपुष्पाम् ॥ (ऋ० १०।७१।५)

अर्थ--एक को वाणी की (वेदादि शास्त्रों की) मित्रता (प्रतिदिन स्वाध्याय) में पक्के अनुभव वाला कहते हैं और इसको वाणी के अच्छे जानने वालों में (विद्वानों में) कोई भी नहीं पहुंच सकते (इसकी बराबरी नहीं कर सकते) हैं। यह (दूसरा) झूठी, न दूध देने वाली वाणी रूप गऊ के साथ फिरता है, जिसने वाणी को बिना फूल (अर्थ) और बिना फल (अनुभव) के सुना (गुरु से पढ़ा) है ॥

१९-उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्, उत त्वः शृण्वन् न शृणोति एनाम्। उत उ त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे, जाया इव पत्ये उशती सुवासाः ॥ (ऋ० १०।७१।४)

उद् उत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय
सू ॥२॥

अर्थ–निःसन्देह उस सबके जानने वाले (सर्वज्ञ) सब में
र्यामीरूप से द्योतमान और सूरियों (विद्वानों) से प्राप्त
योग्य को ज्ञानी पुरुष सबके देखने के लिए ऊंचा करते
२॥

-चित्रं देवानाम् उद्+अगात् अनीकं, चक्षुः मित्रस्य
स्य अग्नेः। आप्राः द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष, सूर्यः
मा जगतः तस्थुषश्च ॥३॥ (ऋ० १।११५।१

अर्थ–आश्चर्यरूप विद्वानों (उपासकों) का बल सूर्य चन्द्रमा
अग्नि का पथदर्शक हमारे भीतर और बाहर प्रकट हुआ
उसने अपने प्रकाश से द्युलोक पृथिवी लोक और अन्त-
लोक को भर दिया है। वह सूरियों (विद्वानों से) प्राप्त होने
र जंगमका और स्थावर का आत्मा (जीवन) है ॥३॥

-तत् चक्षुः देवहितं पुरस्तात् शुक्रम् उच्चरत्। पश्येम
दः शतं, जीवेम शरदः शतम् (शृणुयाम शरदः शतं,
वाम शरदः शतम् अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः
त् ॥४॥ (यजु० ३६।२४)

अर्थ–वह सबका पथप्रदर्शक, विद्वानों का प्यारा, परम
सामने उदय को प्राप्त (प्रकट की नांई स्थित) है,
वः हम आपकी दया से सौ बरस देखें सौ बरस जीवें सौ
सुनें, सौ बरस पढ़ें पढ़ायें, सौ बरस अदीन होवें (अदीन

अर्थ—एक (अविवेकी–बे समझ) फिर देखता हुआ (अर्थ को जानता हुआ) भी वाणी (वाणी के रहस्य–मतलब) को नहीं देखता (जानता) है और एक (मूढ़ बुद्धि) सुनता हुआ (गुरु से पढ़ता हुआ) भी इस (वाणी) को नहीं सुनता (पढ़ता) है। और एक (विवेकी–समझदार) के लिए तो यह (वाणी) अपने शरीर को (वास्तव रहस्य को) ऐसे खोल देती (नंगा कर देती) है, जैसे ऋतुकाल में इच्छा वाली हुई (चाहती हुई) अच्छे वस्त्रों वाली स्त्री पति के लिए अपने शरीर को खोल देती है ॥

ब्राह्मणक्षत्रियौ

२०–धृतव्रतो वै राजा । न वै एष सर्वस्मै इव वदनाय, न वै सर्वस्मै इव कर्मणे। यद् एव साधु वदेद् यत् साधु कुर्यात्, तस्मै वै एष च श्रोत्रियश्च । एतौ ह वै द्वौ मनुष्येषु धृतव्रतौ ॥ (श० ५।४।४।५)

अर्थ—दृढ़व्रत वाला निश्चय क्षत्रिय होता है। निश्चय यह सब ही कुछ (भला बुरा) बोलने के लिए नहीं है, और न सब ही कोई कर्म करने के लिए है। जो ही भला (प्रिय और हित) बोले, जो भला कर्म (हितकर्म) करे निःसन्देह उसके लिए है यह (क्षत्रिय) और जो निश्चय वेद आदि समस्त विद्याओं का पारंगत विद्वान है वे ये दोनों ही निःसन्देह मनुष्यों में दृढ़व्रत वाले हैं ॥

(द्वितीयोऽध्याय)

अर्थ-सबके राजा (सम्राट) वरूण (दुःखों का निवारण करने वाले परमात्मा) ने निश्चय सूर्य्य के लिए और दूसरे ग्रहों को उसके अनुकूल चलने के लिए विस्तृत मार्ग को बनाया है। पाओं जहां (आकाश में पानी में), नही टिकता वहां पाओ टिकाने (रखने) के लिए साधन (व्योमयान, जलयान) को बनाया है। और वह हृदय को बीधने वाले (दिल के दुखने वाले) अनृत कटु भाषणादि कर्मो का निःसन्देह निषेध करने वाला है।

९-वेद वातस्य वर्तनिम, उरोः ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अधि आसते (ऋ० १।२४।६)

अर्थ-वह वायू के भूमिकी चारों ओर घूमने को जानता है। जो (वायू) दूर तक फैली हुई महान् इन्तजारी वाली और गुणो से बहुत बडी है। वह उनको जॉनता है जो इस वायू की पहुच से ऊपर सब लोक और तारा गण रहते है।

१०-निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यासु आ। साम्राज्याय सुक्रतुः (१।२५।२०

अर्थ - वह दृढ़ नियमो वाला और अच्छे कर्मो वाला वरुण अपनी प्रजाओं मे साम्राज्य के लिये (अपने साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिये) सब ओर से सावधान हुआ बैठा है।
११-अतो विश्वानी अद्भुताचिकित्वान् अभिपश्यति कृतानी याचकर्त्वा (ऋ १।२५।११)

उक्तम् ऋषिणा–इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं च उभे श्रियम अश्नुताम् (यजु० ३२।१६) इति ॥

अर्थ—इष्ट (अग्निहोत्रादि कर्म) और पूर्त (अनाथालय, विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला आदि बनवाना कर्म) निश्चय ब्राह्मण का और युद्ध निश्चय क्षत्रिय का प्रधान बल है उन दोनों से ही वे दोनों ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। यह यह कहा है ऋषि ने यह ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों निश्चय इष्टापूर्त से और युद्ध से मेरे ऐश्वर्य को प्राप्त होते है बस ॥

अत्र एतौ श्लोको भवत।

अर्थ—यहाँ यह दो श्लोक है ॥

२–ब्रह्मणो मम रूपे द्वे खड्गाग्नी इति निश्चितम्।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्च एव तत्पूजाधिकृताः ध्रुवम ॥

अर्थ—मुझ ईश्वर के तलवार और अग्नि यह दो रूप निश्चित हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय, ये दोनों ही अटल उन रूपों की पूजा के अधिकारी हैं ॥

३–ब्राह्मणा अग्नि रूपेण खड्ग रूपेण क्षत्रियाः।
यावत् माम् अर्चयिष्यन्ति, तावद् राज्यं सुखानि च ॥

अर्थ—ब्राह्मण अग्नि रूप से और क्षत्रिय तलवार रूप से मुझे जब तक पूजते रहेंगे तब तक राज्य और हर एक संसारिक

हैं। जो उस (अक्षर) को नहीं जानता, वह ऋचा से (यजु, साम ऋचा मंत्रो के प्रतिदिन पठन पाठन से) क्या करेगा । जो ही उसको जानते (साक्षात करते) हैं वे ये (ज्ञानी सत्य महात्मा) बैठ जाते (नीचे ऊपर जाने से छूट जाते), सदा के लिए आवागन के चक्र से बाहर हो जाते हैं।

२०–हंसः शुचिषद् वसुः अन्तरिक्षसद् होता वेदिषद् अतिथिः दुरोणसत्। नृषद् वरसद् ऋतसद् व्योमसद् अब्जाः गोजाः ऋतजाः अद्रिजाः ऋतम् (ऋ ४।४०।५)

अर्थ–वह (अविनाशी ब्रह्म) सूर्य्य है। द्यु लोक में रहने वाला (सूर्य्य हुआ द्यु लोक में रहता है) वायु है आकाश में रहने वाला अग्नि है पृथ्वी में रहने वाला अतिथी (अनियत स्थिती) है घर में (गृहस्थों के घर में) रहने वाला। वह स्त्री पुरुषों में रहने वाला श्रेष्ठों (ज्ञानीयों) में रहने वाला, सत्य में रहने वाला और हृदया काश में रहने वाला है, वह जलों में अनेक रुप से प्रकट होने वाला, पृथवी में अनेक रुप से प्रकट होने वाला वायु में अनेक रुप से प्रकट होने वाला पर्वतों में अनेक रुप से प्रकट होने वाला है। वह आप सत्यस्वरुप है ॥१॥

अर्थ—जो जल का आचमन करता है उससे (आचमन से) इसकी अन्दर से पवित्रता होती है। इसलिए प्रत्येक कर्म की समाप्ति और आरम्भ में अवश्यमेव (जरूर ही) जल का आचमन करे। क्योंकि जल पवित्र करने वाले है ॥

५—अत्र एतं मन्त्रम् उच्चारयन्ति—शं नो देवीः। अभिष्टये आपो भवन्तु पीतये। शं योः अभिस्रवन्तुनः ॥

(ऋ० १०।९।४) इति ॥

अर्थ—यहाँ इस मन्त्र को बोलते है—"हे ईश्वर—दिव्य (अद्भुत) गुणों वाले जल हमारे लिए सुखकारी हों, अभीष्ट (वाँछित) पदार्थ की प्राप्ति के लिए हो हमारे पीने के लिए हों। रोगों की निवृत्ति और रोगजन्य भयों की अप्राप्ति के लिए सदा हमारे सामने वहें।

६—यद् अग्ने ! स्याम् अहं त्वं, त्वं वा घा स्याः अहम् । स्युः ते सत्याः इह आशिषः ॥ (ऋ० ८।४४।२३)

अर्थ—हे अग्नि ! जब मैं तू हो जाऊँगा अथवा तू मैं ही

अर्थ–जो मनुष्य मृत्यु के मार्ग (दुराचार मन की अपवित्रता) का परित्याग करते हुए मेरी ओर (मेरे मार्ग) पर आते हैं वे बडी लम्बी और बहुत अच्छी आयु के धारण करनेवाले होते है। हे मनुष्यो ! प्रजा से और धन से वृद्धि को प्राप्त होते हुए (बढते हुए) तुम सब शुद्धा चरण वाले और पवित्र मन वाले हुए यज्ञकर्म (श्रेष्ठ तम कर्म) के अधिकारी होवो (बनो) ॥

९–आरोहत आयुः जरसं वृणाना:, अनुपूर्वं यतमाना: यतिष्ठ इह त्वष्टा सुजनिभा सजोषा:, दीर्घम आयु:, करति व: (ऋ० १०।१८।६)

अर्थ-सबका उत्पन्न करने वाला पुरुष (सब में अन्तरात्मा -रूपसे पूर्ण परमात्मा) हजारो (असंख्यात) सिरो (द्यु लोका) वाला, हजारों आखो (सूर्य्यों) वाला, और हजारो पाओ (भूमियो वाला है! वह द्यौ, अन्तरिक्ष और भूमि (सब ब्रह्माण्ड) को, सब ओर से (भीतर बाहर सब ओर से) घेरकर दस (असख्यात। अंगुल (हाथ) आगे बढकर स्थित (ठहरा हुआ) है । ॥१॥

१७-पुरुषः एव इदं सर्वं यद् भूतं यत् च भव्यम् उत अमृतत्वस्य ईशानो यद् अन्नेन अतिरोहति ॥२॥

(ऋ १०।६०।१०)

अर्थ—पुरुष ही यह सब कुछ है। जो हुआ (अबतक हुआ) और जो आगे होगा और उस अमर पने (स्वस्थ जीवन) का स्वामी (मालीक) हैं! जो अन्नसे (साझ सुवेरे यथारुचि खाये हुऐ अन्न से) बढता हे। ॥२॥

१८-एतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः। पादो अस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद् अस्य अमृतं दिवि ॥३॥

(ऋ १०।६०।३)

अर्थ-इतनी (भूत भविस्यत् और वर्तमान जगत्) इस (पुरुष) की विभूति (जगत्-जननी शक्तिका विस्तार) है! और पुरुष इस (जगत्रुपी विभूति) से वहुत वडा हैं सब पदार्थ (जड़ चेतन सब जगत) इस (पुरुष) का एकपाद (एकभाग –चौथा हिस्सा) हैं ! और इस (पुरुपपर)के मृत जगत (विनाथी जगत) के सभन्धसे रहित तीन पाद प्रकाशमें हैं! (अप्रकाश जगत से ऊपर हैं!)॥३॥

११-ॐ स्वस्ति नो मिमीताम अश्विना भग, स्वस्ति देवी अदितिः अनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः, स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचे तुना॥ (ऋ० ५।५१।११)

अर्थ-हे अनन्त शक्ति परमात्मा ! आपकी अरोगता तथा नीरोगता को बनाने वाली दोनों शक्तियें हमारे लिए अरोगता तथा निरोगता के प्रदान से सुख को बनायें, आपकी ऐश्वर्य शक्ति हमारे लिए ऐश्वर्य के प्रदान से सुख को बनाये किसी से न रुकने वाली, तुझ देव की अखंडनोय देवजननी शक्ति हमारे लिए देवतुल्य पुत्र पौत्रादि प्रजा के प्रदान से सुख को बनाये । सब से बलिष्ठ आपकी जगत्पोषक (निरन्तर जगत को बढ़ाने वाली) शक्ति हमें ऐश्वर्य तथा प्रजा की प्रति दिन पुष्टि (बढ़ती) से सुख को दे, उत्तम विचारों वाले सज्जन पुरुषों के निवास से युक्त हुए, द्यु लोक और पृथिवी लोक हमें निर्भय निवास से सुख को दें ॥

१२-स्वस्तये वायुम् उपब्रवामहै, सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पति बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्या सो भवन्तुनः॥

(ऋ० ५।५१।१२)

अर्थ-हम सुख के लिए वायु का आह्वान (बुलाना) करते हैं, हम चन्द्रमा का जो रस प्रदान से सब जगत का पालक है, सुख के लिए आवाहन करते हैं। हम वर्षा लाने वाली सब वायुओं (मरुतों) के सहित बड़ी वाणी के स्वामी मेघ का

१२-यस्यइमे हिमवन्तो महित्वा, यस्य समुद्रं रसया सह प्राहुः। यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहु, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (ऋ० १०।१२१।५)

अर्थ-अपनी महिमा (विभूति) के सहित ये (सामने उत्तर दिशा में स्थित) हिम वाले (बर्फ़ वाले) पर्वत (हिमालय की पर्वत माला) जिसके है रसानदी (भारत सम्राट हिरण्यगर्भ और पाणि वनी असुरपाल की सीमान्त नदी) के सहित समुद्र (दक्षिणी तथा पूर्वीय समुद्र) को जिसका कहते हैं। ये चारो बड़ी दिशायें (सीमायें) जिसकी हैं और इन चारों बड़ी दिशाओ को स्थिर करने वाली दोनो भुजाए भी जिसकी है हम उस सब देवो देव हिरण्य गर्भ की हविर्यज्ञ से श्रद्धा भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं ॥

१३-येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा, येन स्वः स्तभितं येन नाकः यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः, कस्मै देवाय हविसा विधेम ॥ (ऋ० १०।१२१।५)

अर्थ-जिसने द्यौ को तेजस्वी और पृथिवी को ठोस बनाया है जिसने सूर्य को थामा है और जिसने चन्द्रमा को थामा है जो आकाश में लोकों (भूगोलों) का बनाने वाला है हम उस सब प्रजा के स्वामी देवों के देव हिरण्यगर्भ की हविर्यज्ञ से श्रद्धाभक्ति पूर्वक पूजा करते हैं।

१४-यं क्रन्दसी अवसा तस्त भाने, अभि+ऐक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूरः उदितो विभाति, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (ऋ १०।१२४।६।)

सुख (वृष्टिसुख) के लिए आह्वान करते हैं, हे ईश्वर ! आदित्य (सूर्य) के पुत्र—बारह मास (महिने) हमारे सुख के लिए हो।

१३—विश्वे देवाः नो अद्या स्वस्तये, वैश्वानरो वसुः अग्निः स्वस्तये। देवाः अवन्तु ऋभवः स्वस्तये, स्वस्ति नो रुद्रः पातु अंहसः ॥(ऋ० ५।५१।१३)

अर्थ—हे सब के नियन्ता ! आपकी सब शक्तियें आज (अज्ज) हमारे सुख के लिए हों, आपकी अग्रणी ज्ञान शक्ति, जो धन को देने वाली और सब से पहले सब मनुष्यों की पूज्य देवता है हमारे सुख के लिए हो। शिल्पविद्या में निपुण विद्वान सुख के लिए हमारी रक्षा करें और दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाले आप हमारे सुख के लिए हमें पाप कर्म से बचाय (रक्षा करें)

१४—स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये ! रेवति !। स्वस्ति नः इन्द्रश्च अग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥

(ऋ० ५।५१।१४)

अर्थ—हे जगदीश ! दिन में कष्टों से रक्षा करने वाली और रात्री में कष्टों का निवारण करने वाली आपकी दोनों शक्तियां हमारे लिए सुखकारी हो, हे पुरुषार्थ पथ पर चलने वालों का हित करने वाली और बहुत धन वाली ईश्वरीय शक्ति ! हमारे लिए सुखकारी हो। हे स्वामिन। आपकी परम ऐश्वर्य शक्ति और सब से अग्रणी ज्ञानशक्ति दोनों हमारे लिए

बिना जाने बूझे किया है उस सब पाप का क्षमा करने वाला तू है ।

१०–आयु र्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां, पृष्ठं यज्ञेन, कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां, वाग् यज्ञेन कल्पताम् आत्मा यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां । प्रजापतेः प्रजाः अभूम स्वर देवाः । अगन्म अमृताः अभूम ॥ (ता०सं० १।७।६) (यजु० ६।२१)

अर्थ–हे भगवन् ! हमारी आयु यज्ञ से बढ़े (समर्थ हो) प्राण (घ्राण) यज्ञ से समर्थ हो, नेत्र यज्ञ से समर्थ हो, कान यज्ञ से समर्थ हो मेरु दण्ड यज्ञ से समर्थ हो, मन यज्ञ से समर्थ हो, वाणी यज्ञ से समर्थ हो, शरीर यज्ञ से समर्थ हो, यज्ञ यज्ञ से समर्थ हो । हम प्रजापति की प्रजा होवें, हे देवताओं हम गृहस्थाश्रम के सुख को प्राप्त होवें, हम पुत्र पौत्र आदि प्रजा से अमर होवें ॥

११–मधुश्च माधवश्च वासन्ति को ऋतु (यजु० १३।२५) शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मौ ऋतु नभश्च नभस्यश्च वर्षि को ऋतु (यजु १४।६६।१५) इषश्च ऊर्जश्च शारदौ ऋतु (यजु० १४।१६) सहश्च सहस्यश्च हैमन्तीको ऋतु (यजु० १४।२७) तपश्च तपस्यश्च शैशिरौ ऋतु ॥ (तै०सं० ४।४।११)

अर्थ–चैत्र और वैशाख, दोनों वसन्त ऋतु हैं, ज्येष्ठ और आषाढ दोनों ग्रीष्म ऋतु हैं, श्रावण और भादों दोनों वर्षा

सुखकारी हों, हे अक्षय-उपजाऊ-शक्तियों वाली भारतभूमि! आप हमारे लिए सुख को बनायें ॥

१५-स्वस्ति पन्थाम् अनुचरेम सूर्याचन्द्रमसौ इव। पुनर्ददता अघ्नता जानता सङ्गमे महि ॥ (ऋ० ५।५१।१५)

अर्थ हे ईश्वर! हम सूर्य और चन्द्रमा की नाईं, आपके आज्ञापथ में सुखपूर्वक चले और बार बार देने वाले अपने से विमुखों को भीं न मारने (न दुःख देने) वाले तथा सबके हृदय की जानने वाली तुम अन्तर्यामी के साथ सम्बन्ध वाले होवें ॥

१६-आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो अदब्धासो अपरीतासः उद्भितः। देवाः नो यथा सदम् इद् वधे असन् अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ (ऋ० १।८६।१)

अर्थ-हे ईश्वर हमको सब ओर से कल्याण करने वाले ज्ञानबल और क्रिया बल प्राप्त हों, जिनको कोई न दबा सके, न रोक सके, और जो प्रतिदिन बढ़ने वाले हों। जिससे सब देवता सदा ही हमारी वृद्धी के लिये हो, और अप्रमादी हुए (प्रमाद न करते हुए) दिन दिन (हर एक दिन) हमारी रक्षा करने वाले हो।

१७-आविः संनिहितं गुहा चरत् नाम महत् पदम् । तत्र इदं सर्वम् अर्पितम्, एजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थ-वह प्रकट (जाहिर) है अत्यंत समीप है हृदय गुफ़ा में रहता है उसका स्वरूप प्रसिद्ध और सबसे बडा है। उसी में यह सब ठहरा हुआ है, जो कांपता है, जो प्राण (सांस) लेता है और जो स्थिर (अचल) है ॥

१८-यो विद्यात् सूत्रं विततं, यस्मिन् ओताः प्रजा इमाः । सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्, स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥

(अथर्व १०।८।३७)

अर्थ-जो इस फैले हुए प्रकृति रुपी तागे को जानता है जिसमें ये सब प्रजाएं पाई हुई है। और जो इस (प्रकृति रुपी) तागे के मूल तागे (ब्रह्म) को जानता है वह सब से बड़े ब्रह्म को जानता है।

१९-पूर्णात् पूर्णम् उदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते । उतो तद् अद्य विद्याम, यतः तत् (एतत्) परिषिच्यते ॥

(अथर्व १०।८।२९)

अर्थ-पूर्ण से (सब प्रकार की त्रुटिओं से रहित ब्रह्म से) पूर्ण (सब प्रकार की त्रुटियों से रहित जगत वृक्ष) उत्पन्न होता है। और पूर्ण (ब्रह्म) से पूर्ण (जगतवृक्ष) सेचा जाता है (पाला जाता है) जिस पूर्ण से यह पूर्ण (जगदवृक्ष) सेचा जाता है आज हम उसको जाने ॥

अर्थ–नौ द्वारों वाला तीनों गुणों से अच्छादित (व्याप्त) जो कमल की नांई परम पवित्र शरीर है उसमें जो प्राणों वाला (प्राणों का प्राण) पूजनीय ब्रह्म है उसको निश्चय ब्रह्म वेत्ता जानते हैं ॥

नवम अध्याय

१–अकामो धीरो अमृतः स्वयंभुः रसेन तृप्तो न कुतश्चन ऊनः तम् एव विद्वान न बिभाय मृत्योः, आत्मानं धीरम् अजरं युवानम् ॥ (अथर्व १०।८।४४)

अर्थ–इच्छा से रहित धैर्यवाला, न मरने वाला, अपने आप होने वाला (स्वतःसिद्ध), आनन्द से परिपूर्ण और जो किसी से भी न्यूननहीं है (जिससे सब न्यून हैं) उस ही नजीर्ण (वृद्ध) होने वाले, सदायुवा, सदा बुद्धिवाले आत्मा को जानता हुआ मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता ॥

२–ब्रह्मचारि ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन देवाः अधि विश्वे समोताः प्राणापानौ जनयन् आद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधाम् ॥ (अथर्व ११।५।२४)

अर्थ–ब्रह्मचारी चमकती हुई वेद विद्या (वेदादी समस्त विद्या) को धारण करता है, उसमें (ब्रह्मचारी) सब देवता (ईश्वरीय शक्तीयें) रहती हैं। वह (ब्रह्मचारि) प्राण अपान और व्यान के स्वास्थय को वाणि मन और हृदय की शुद्धता को विद्या और बुद्धि के उत्कर्ष को प्रकट करता हुआ विचरता है

अर्थ—जगत्कर्ता हमारे लिये शान्ति कारक(दुःखों की निवृति करने वाले) हो, और जगत् धर्ता हमारे लिये शान्ति कारक हो। बड़ी विस्तृत (लम्बी चौडी) भारत–भूमी गेहूं जौ आदि सब अन्नोंके साथ हमारे लिये शान्ति कारक हों। (महान् पृथिवीलोक और द्यु लोक दोनों, हमारे लिए शान्ति कारक हों) पहाड़ हमारे लिये शान्ति कारक हो, विद्वानों के आदर पूर्वक आह्वान (बुलावे) हमारे लिये शान्ति कारक हो

१९—शं नो अग्निः ज्योतिरनीको अस्तु, शं नो मित्रावरुणौ अश्विनाशम् शं नः सुकृता सुकृतानि सन्तु शं नः इषिरो ... वतु वातः (ऋ ७।३।५।४)

अर्थ—प्रकाश रुप मुखवाला अग्नि हमारे लिये शान्ति कारक , दिन और रात हमारे लिये शान्ति कारक हो। सूर्य और न्द्र हमारे लिये शान्ति कारक हो पुण्यात्माओं के पुण्यकार्य हमारे लिये शान्ति कारक हो। गतिशील वायु हमारे लिये शान्ति कारक हुआ सामने बहे (चले)

२०—शं नो द्यावापृथिवी पूर्व हूतौ शम् अन्तरिक्ष दृशये नो अस्तु। शं नः ओषधीः वनिनो भवन्तु शं नो रजस–स्पतिः अस्तु विष्णुः

अर्थ—पहले बुलावे (प्रार्थना पूर्वक आह्वान) में ही द्युलोक और पृथ्वी लोक हमारे लिये शान्ति कारक हो, अन्तरिक्षलोक (आसमान) हमारे और हमारी दृष्टी के लिये शान्ति कारक हो सब ओषधियें (अन्न) और वृक्ष (वनस्पती) हमारे लिये शान्ति

अर्थ--हे स्वयं यशस्वी । मैं सदा तेरा नाम उच्चारण करता हूं

५-असिः न पर्वो वृजिना शृणासि (ऋ १०।८६।८)

अर्थ-खड्ग जैसे पशुओं के जोड़ों को काटती है। वैसे पापों को काटता है

६-अश्रीरः इव जामाता (ऋ ८।२।२०)

अर्थ-सुसराल में जवाई की नाई अश्रीमान (श्री हीन होवूं

७-अधा ते सुम्नम् ईमहे (ऋ ३।४२।६)

अर्थ-अब हम तुमसे सुख चहाते हैं ।

८-पिता इव पुत्रान् अभिसंस्वजस्व (अथर्व

अर्थ-जैसे पिता पुत्रों को वैसे हमे गले लगा

९-नमस्ते अग्ने ! ओजसे (ऋ ८।७५।१०)

अर्थ-हे सबके अग्रणी तुझ तेजस्वी को नमस्कार है

१०-धन्वन इव प्रपाऽसी (ऋ १०।४।१)

अर्थ-मरु देश में प्याऊ की नाई तू है

११-मा नो अग्ने दुर्भृतये प्रवोचः (ऋ ७।१।२२)

अर्थ-हे अग्नि हमको दुष्ट नोकरी के लिये न कहना

१२-कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः (ऋ २।६।५)

अर्थ-अच्छे पुत्रों वाले धन का स्वामी हमें बना

कारक हों, जयशील (सदा विजयी) लोक मात्र (सब जगत्) का स्वामी परमात्मा हमारे लिये शान्ति कारक हो ।

(तृतीयअध्याय)

१-शं नः इन्द्रो वसुभिः देवो अस्तु, शम् आदित्येभिः वरुणः सुशंसः शं नो रुद्रेभिः जलाषः, शं नः त्वष्टा ग्नाभिः इह शृणोतु (ऋ ३।५।६)

अर्थ-परम ऐश्वर्य मान परमात्मा जो देवो का देव है, धनवानों के साथ हमारे लिये शान्ति कारक हो। दुःखो का निवारण करने वाला वरणीय परमात्मा, जो बड़ी प्रशंसा वाला है । अदिति माता के पूर्व विद्वानो के साथ हमारे लिए शान्ति कार हो । दुष्ठो का रुलाने वाला ईश्वर जो जल की नाईं शान्त है दुष्टो को रुलाने वाले वीर्यों के साथ उमारे लिए शान्त कारक हो । रुप का बनाने वाला ईश्वर रुपवती स्त्रियोंके साथ हमारे लिए शान्ति कारक हुआ इन यज्ञ कर्मों में हमारी प्रार्थना कीसुनें ।

२-इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः (ऋ १०।१४।१५)

अर्थ-यह (स्वाध्याय कर्म) नमस्कार सहित अर्पण है । उन सब ऋषियों को जो हमारे पूर्वज हैं और जो उनसे भी पूर्व (उसके भी पूर्वज) हैं । और जो वैदिक-पथ (पन्थ) के प्रवर्तक है

३-ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये, साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्र प्रपद्ये वाग्+ओजः सह+ओजः मयि प्राणापानो यजु (३६।१)

अर्थ-हे ईश्वर ! मैं उच्चारणपटुवागइन्द्रियों से ऋचामन्त्रों को प्राप्त होऊं अव्यग्र मन (विषयान्तर में न लगे हुए मन)

१९–नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितः यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति। तस्मै आपो घृतम् + अर्षन्ति सिन्धवः तस्मै इयं दक्षिणा पिन्वते सदा (ऋ १।१२५।५)

अर्थ–जो मन खोलकर दान (देता अर्थियों के मनों को यथा काम दान से भरता) है। वह निःसन्देह पुण्य का आश्रय (सहारा) लिये हुआ द्यु लोक (स्वर्ग) के शिखर पर प्रतिष्ठित हो कर रहता है, और यहां विद्वानों में मान को प्राप्त होता है। हे सिन्धुओं (हिन्दुओं) उसके लिये अन्तरिक्ष (आकाश) जल को बहाता है उसके लिये उत्साहवाली हुई यह भूमि सदा अन्नों और फलों को पुष्ट करती है

२०–न वे उदेवाः क्षुधम् इद् वध ददुः उत आशितम् उपगच्छन्ति मृत्यवः उतो रयि पृणतो नोपदस्यति उत अपृणान मर्डितारं न विन्दते (ऋ १०।११७।१)

अर्थ–देवताओ ने (ईश्वरीय शक्तियो ने) निश्चय भूख (भूखे) को ही नियम से मृत्यु नहीं दी खाने वाले को भी अनेक प्रकार की मृत्युएं प्राप्त होती है। भूखो को मन खोलकर देने वाले (दानी) का धन किसी काल में भी नही क्षीण होता है, और न देता हुआ (भूखो को मन खोल कर न देता हुआ) सुख देने वाले (परमात्मा) को नही लभता (प्राप्त होता) है।

से यजुर्मन्त्रों को प्राप्त होवूं, स्वस्थ्यश्वास-प्रश्वास से साँम मत्रों को प्राप्त होवूं, आरात् श्रुति (दूर से समीप से सुनने की शक्ती वाले) कानो से अथर्वमन्त्रों को प्राप्त होवूं वाग् इन्द्रिय और वाग् इन्द्रिय का तेज (वाग्मिता) बल और बल का तेज (प्रगल्भता) मुझे में हो, प्राण (श्वास) और अपान (प्रश्वास स्वास्थ मुझमें हो।

४-यत् जाग्रतो दूर मुदेति दैवं तद् (यत्) उ सुप्तस्य तथैव एति। दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिः एकं तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजु ३४।१)

अर्थ-जो दिव्य (अलौकिक)शक्ति वाला (मन) जागते हुए पुरुष का दूर (शरीर बाहर) जाता है। और जो (वह) सोये हुए पुरुष का वैसे ही (जैसे गया था वैसे ही) लौट आता है जो दूर पहुचने वाला और ज्योतियों (इन्द्रियों) में अद्वितिय ज्योति (इन्द्रिय) है। वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

५-येन कर्माणि अपसो मनीषिणः यज्ञे कृणवन्ति विद-थेषु धीराः। यद् अपूर्वं यक्षम् अन्तः प्रजानां, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥ (यजु० ३४।२)

अर्थ-जिसे (मन) से कर्मशील बुद्धिमान यज्ञ में और धैर्यवाले शूर वीर युद्धों तथा राजसभाओं में, अनेकविध कर्मो को करते हैं। जो सब प्राणियों के भीतर अद्भुत (आश्चर्य) पूज्य वस्तु हैं, । वह मेरा मन शुभसङ्कल्पवाला हो ॥२॥

६-यत् प्रज्ञानम् उत चेतो धृतिश्च, यत् ज्योतिः अन्तः अमृतं प्रजासु। यस्मात् न ऋते किंचन कर्म क्रियते, तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥ (यजु० ३४।३)

१३-यत्र अनुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः लोकायत्र ज्योतिष्मन्तः तत्र म् अमृतं कृधि ॥ (ऋ ६.११३।६)

अर्थ-जिस देश में इच्छानुसार (स्वतंन्त्रता पूर्वक) विचरना (चलना फिरना) होता है जिस देश में लोग तीसरे स्वर्ग अर्थात तीसरे द्यु लोक में चमकते तारों (सूर्यों) की नाई प्रकाश वाले (महा तेजस्वी) हैं, उस देश में मुझे चिरजीवी कर ॥

१४-यत्र कामा निकामारश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् । स्वधा च यत्र तृप्तिश्च, तत्रमाम् अमृत कृधि ॥ (ऋ ६।११३।१०)

अर्थ-जिस देस में वांछित पदार्थ उपभोग्य पदार्थ और नातिवाँछित (उत्तम उपभोग्यपदार्थ) विद्यमान हैं जिस देश में सबसे बडे सूर्य का पूजा स्थान है जिस देश में नाना प्रकार का अन्न है तथा क्षुधा (भूख) का अभाव दोनो हैं। उस देश में मुझे चिरजीवो कर ॥

१५-यत्र आनन्दाश्च मोदाश्च, मुदः प्रमुदः आसते । कामस्य आसाः कामाः, तत्र माम् अमृतं कृधि ॥४॥ ऋ ६।११३।१)

अर्थ-जिस देश में विद्या सुख और विषय सुख दोनों है जिस देश में पदार्थ सुख, कुटुंब सुख मौजूद हैं जिस देश में मनकी सब इच्छाये पूरी होती हैं, उस देश में मुझे चिरजीवी कर ॥

१६-शं नो वातो वातु, शं नः तपतु सूर्यः । अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रतिधीयतां शम् उषसो नो व्युच्छन्तु ॥

(अथर्व ७।७२।१)

अर्थ-हे ईश्वर ! वायु हमारे लिय सुख कारी बहे. सूर्य हमारे लिए सुखकारी तपे दिन हमारे लिए सुखकारी हों रात्रियां

सुन्दर होने पर भी तेरे मार्ग पर न चलने वाले पार्थिव शरीर को मैं प्राप्त न होवुं । हे उत्तम क्षत्रियः मुझ पर कृपा कर और मुझे अपने मार्ग पर चला कर सुखी कर ॥

३—क्रत्व समह ! दीनता, प्रतीपं जगमा शुचे ! मृड सुक्षत्र मृडय ॥ (ऋ० ७।८६।३)

अर्थ—हे नित्यमहान ! हे परम पवित्र ! मैं अशक्तता (शक्ति न होने) के कारण कर्त्तव्य कर्म से विपरीत कर्म को प्राप्त हुआ हूँ हे उत्तम क्षत्रिय ! कृपा कर, मुझे सुखी कर ॥

४—यद् वाव पुरुषो मनसा अभिगच्छति तद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति (तै० आ० १।२३) । [न मनसा अनृतम् अभिगच्छेत् न वदेत् न कुर्यात्] । अनृते खलु वै क्रियमाणे, वरुणो गृह्णाति ॥१२॥ (तै० आ० १।७।२)

अर्थ—निःसंदेह मनुष्य जिसको मन से प्राप्त होता (बार बार चिन्तन करता) है, उसी को वाणी से बोलता है उसी को शरीर से करता है इसलिये न मन से झूठ को प्राप्त होवे न वाणी से कहे और न शरीर से करे क्यों की अनृत किये जाने पर अवश्य ही ईश्वर पकडता (दण्ड देता) है ॥२॥

५—तपसा वै लोकां जयन्ति (शत० ३।४।४।२७) । [अमुं च इमं च । तद् एतद् ऋग्भ्याम् अभ्यनूक्तम्] "त्व तपः परितप्य अजयः स्वः" (ऋ० १०।१६७।१) तपसा युजा विजहि शत्रून् (ऋ० १०।८३।३) इति ॥१॥

अर्थ—तप से निश्चय लोक को जीतते हैं। उस लोक (पर लोक) और इस लोक दोनों को। वह यह दो मन्त्रों से कहा गया

९—सुषारथिः अश्वान् इव यत् मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशु
वाजिनः इव हृत्प्रतीष्ठं यद् अजिरं जाविष्ठं तत् मे
शिवसङ्कल्पमस्तु (यजु ३४।६)

अर्थ—अच्छा सारथी जैसा असील घोड़ों को इशा
जैसे वलवान (तेज) घोड़ों को रासों से चलने के मार्गों
जाता है (वैसे जो (मन) मनुष्यों को संकल्प से, इन्द्रियां
संसारिक) विषयों में ले जाता हैं। जो हृदय में स्थित है,
बूढा नहीं होता, और अत्यन्त वेगवान है, वह मेरा
शुभसंकल्पवाला हो ॥६॥

१०—ॐ भूः भुवः स्वः तत् सवितुः वरेण्यं भर्गो देव
धीमहि। धियो यो नः प्रचो दयात् ॥१॥ (यजु ३६।३)

दुःख रहित सुख (ब्रह्म) को प्राप्त होते है। शम मनुष्यों का दुःसह कर्म है, शम में सब प्रयिष्ठित है। इसलिए शम को सब से श्रेष्ठ (बढिया) कहते हैं ॥

सप्तमदशो अध्याय

१–दानं यज्ञानां वरुथं, लोके दातारं सर्वाणि भूतानि उपजीवन्ति दानेन अरातिः अपानुदन्त, दानेन द्विषन्तोः मित्राणि भवन्ति, दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद् दानं परमं वदन्ति ॥
(तै आ १०।६३)

अर्थ–दान शुभकर्मों की त्रुटियों का निवारण करने वाला हैं लोक में दाता (दान करने वाला) का सब प्राणी आश्रय लेते हैं। दान से शत्रु दब जाते हैं, दान से द्वेषी मित्र हो जाते है, दान में सब प्रतिष्ठित है। इसलिए दान को सब से श्रेष्ठ कहते हैं

२–धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजाः उपसर्पन्ति। धर्मेण पापम् अपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति ॥ तै आ १०।६३)

अर्थ–धर्म सब जगत की प्रतिष्ठा (आश्रय-सहारा) है लोक में धर्मात्मा के पास सब प्रजायें (स्त्री, पुरुष, छोटे बड़े) आते हैं। धर्म से पाप को दूर करते हैं, धर्म में सब प्रतिष्ठत हैं। इसलिए धर्म को सब से श्रेष्ठ कहते हैं।

३–प्रजननं वै प्रतिष्ठा लोके साधु। प्रजातन्तु तन्वानः पितृणाम अनृणो भवति। तद् एव तस्य अनृणम। तस्मात प्रजननं परमं वदन्ति ॥ (तै आ १०।६३)

१४-ब्रह्म वनं, ब्रह्म सः वृक्षः आसीद् यतो द्यावा पृथिवी निष्ठतक्षुः । मनीषिणः ! मनसा विब्रवीमि वः, ब्रह्म अध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ (तै० ब्रा० २।८।६)

अर्थ-ब्रह्म (परमात्मा) ही वह वन है, ब्रह्म वह वृक्ष है जिस से द्यु लोक और पृथिवी लोक को घड़ा । हे मनीषियो मन से पूछ कर ही तुम को कहता हूं ब्रह्म ही है वह जो सब भुवनों को धारण करता हुआ उन सब का अधिष्ठाता है ॥

१५-अग्निः इव अनाधृष्यः, पृथिवी इव सुषदा भूयासम् । सूर्य्यः इव अप्रतिधृष्यः, चन्द्रमाः इव पुनर्भूः भूयासम् मनः इव अपूर्णो, वायुः इव श्लोकभूः भूयासम् । ब्रह्म इव लोके क्षत्रम् इव श्रियां भूयासम् ॥ (ऐ० आ० ५।१)

अर्थ-हे परमात्मा ! मैं अग्नि की नांई हर ओर से न सहार सकने योग्य तेज वाला, पृथिवी की नांई अच्छी स्थिती वाला होवुं । सूर्य की नई सामने से किसी की दृष्टि में न आ सकने वाला (सामने से मुझे कोई दृष्टि उठा कर न देख सके, ऐसे महा तेज स्वी) और चन्द्रमा की नांई पुनःपुनः (प्रतिदिन) नया होने वाला होवूं । मनकी नांई सबका प्रेरक और स्वयं अप्रेर्य (प्रेरक रहित), वायु की नांई यश के साथ सर्वत्र गति वाला होवूं । ब्राह्मण की नांई (लोक सम्मान) में और क्षत्रिय की नांई ऐश्वर्य में मैं होवूं ॥

१६-शर्म मे द्यौः, शर्म मे पृथिवी शर्म विश्वम् इदं जगत् । शर्म चन्द्रश्च सूर्यश्च शर्म ब्रह्म प्रजापती ॥ (तै० आ० ४।१)

१८–विष्णो कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥ (ऋ १।२२ १६)

अर्थ–हे मनुष्यों ! तुम विष्णु (सर्वव्यापक परमात्मा) के उन कर्मों को देखो जो उसने मनुष्यों के लिए अवश्यकर्तव्य निश्चित किया है । क्योंकि इन्द्रियों के स्वामी जीव का एक वही योग्य मित्र है ॥१॥

१९–त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुः गोपाः अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥

अर्थ–विष्णु (सर्वव्यापक परमात्मा) जो सबका रक्षक और किसी से न दबने वाला है अवश्य कर्तव्य कर्मों का निर्धारण (निश्चय) करता हुआ इस जगत् से तीन पाओं ऊपर गया हुआ (तीन हिस्से बढ़ा हुआ) है ॥२॥

२०–इदमं विष्णुः विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् । समूढम् अस्य पांसुरे ॥३॥ (ऋ० १।२२।१७)

अर्थ–हे मनुष्यों ! विष्णु ने इस जगत (स्थूल सूक्ष्म तथा कारण–रूप जगत) को पाओं (एक पाओं) सेमापा तीन भाग कर के इस(जगत्)में रखा । इस (विष्णु)के जगत्‌रूपी धूली वाले उस एक पाओं में यह सब जगत समा गया (एक पाओं के बराबर भी न हुआ) ॥३॥

नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥ दोनों नथनों को स्पर्श करे ।
अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ दोनों आंखों को स्पर्श करे ।
कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ दोनों कानों को स्पर्श करे ।
बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ दोनों भुजाओं को स्पर्श करे ।
ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥६॥ दोनों जंघाओं को स्पर्श करे ।
अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥ दाहिने हाथ से जल सारे शरीर पर छिड़के ।

म्नलिखित मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करे ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृ० खं १ सूक्त ११॥

फिर अगले मन्त्र को बोलकर उस अग्नि को हवनकुण्ड में रख दे । ॐ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीववरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥

निम्न मन्त्र से अग्नि को खूब प्रज्ज्वलित करे ।

ॐ उद्बुध्य स्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ॐ सृजेथामंच ।
अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥२॥

फिर नीचे लिखे मन्त्रों के साथ आठ २ अंगुल लकड़ी की तीन समिधा घृत में भिगो २ कर तीन बार यज्ञकुंड में डालना चाहिए ।

ॐ अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नेय जातवेद से इदन्नमम ॥१॥ इससे एक समिधा ।

ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन हव्या जुहोतन स्वाहा । इदमग्नये इदन्नमय ॥१॥ ॐ सुमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नेय जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये

(१) तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्तीसूरयः। दिवी इव चक्षु आततम् ॥४॥

(ऋ. १।२२।२०)

अर्थ–उस विष्णु के उत्कृष्ट(ऊंचे) स्वरूप को (जगत् के सम्बन्ध से रहित अव्यक्त स्वरूप को) विद्वान सदा देखते हैं। जैसे द्यु लोक (आकाश) में सब ओर से विस्तार पाये हुए (खूब चढ़े हुए) सूर्य को देखते हैं।

(२) तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोः यत् परमं पदम् ॥५॥ (ऋ. १।२२।२१)

अर्थ–उसको बुद्धिमान (ज्ञानी) जो व्यवहारी (फल की कामना से कर्म करने वाले) नहीं और अज्ञान–निद्रा से जागे हुए हैं। अपने हृदय मन्दिर में अच्छी तरह प्रकाशित करते (साक्षात् करते) हैं।जो विष्णु का सबसे उत्कृष्ट (ऊंचा) पद (स्वरूप) है ॥५॥

३–विष्णोः नु कं वीर्याणि प्रवोचं, यः पार्थिवानी विममे रजांसी। यो अस्कमायद् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणः त्रेधो-रुगायः ॥१॥ ऋ० १।१५४।१)

जातवेदसे इदन्नमम ॥३॥ इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा।

ॐ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि बृहच्छोचायविष्ठय स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम ॥४॥ इससे तीसरी समिधा। तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से घी की पाँच आहुतियां दें।

ॐ अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध्वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥१॥ दाहिनी अंजली में जल लेकर इन मंत्रों से वेदी के चारों ओर छिड़के।

ॐ अदितेऽनुमन्यस्व ॥१॥ इससे पूर्व दिशा में।

ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥२॥ इससे पश्चिम में।

ॐ सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥३॥ इससे उत्तर में।

ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥४॥ यजुर्वेद अ० ३० में ॥१॥ इससे चारों ओर।

(स्थूल सूक्ष्म तथा कारण रूप जगत) का मापने वाला (व्यापने वाला) और बड़ी प्रशंसा वाला है ।

४–यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति । यः उ त्रिधातु पृथ्वीम् उत द्याम, एको दाधार भुवनानी विश्वा ॥२॥ (ऋ० १।१५४।४)

अर्थ–जिस (विष्णु) के तीन पाद (तीन भाग आनन्द से पूर्ण (भरे हुए) क्षीण होने वाले जग के से रहित अपनी जगत निर्माण शक्ति के साथ हर्ष में (खुशी में डूबे हुए हैं)। जो (विष्णु) अकेला ही त्रिगुण को पृथिवी को और द्यौ को और सब प्राणियों [illegible] करता है ॥२॥

अर्थ–इसीसे वह विद्वान सब नये उत्पन्न हुऐ पदर्थों को प्रत्यक्ष देखता है। और उनको भी प्रत्यक्ष देखता है। जो उत्पन्न हो चुके है और जो आगे उत्पन्न होंमे वाले हैं।

१२–इमं मे वरुण ! श्रुधी हवम् अद्या च मृडय ! त्वाम् अवस्युः आचके (ऋ १।२५।१६)

अर्थ–हे वरुण मेरी इस पुकार (प्रार्थना) को सुन और आजही कृपा कर। आपकी रक्षा चाहते हुसे मैंने तुझे (आपको) पुकारा है।

१३–उद् उत्तमं मुमुग्धि नो विपाशंमध्यमं चृत। अव अध मानि जीव से (ऋ १।२५।२८

अर्थः–है वरुण हमरे सुखपूर्वक जीने के लिये सिर की फांस (लोकैषणा) को ऊपर खैंचकर हमको छुड़ाबीच की फांस (पुत्रैषणा) के टुकड़े टुकड़े कर। और निचली फांसों (वित्तैषणा) को नीचे

किसोसे न दबने वाले ! तुझ नियमो केपालक उत्तमवीर को हजारो धन प्राप्त हैं।

१५—त्वम् अग्ने ! प्रयतदक्षिणां नरं, वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः। स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृत् जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ (ऋ १।३१।१५

अर्थः—हे अग्नि ! तू दान देने वाले वीरकी सिये हुए कवच की नाई सब ओर से रक्षाकरता है। और जो स्वादु अन्नवाला सबको सुखदेने वाला प्रतिदिन घर में मनुष्य यज्ञ (अतिथि यज्ञ) करता है। वह आपकी कृपासे इसलोक में स्वर्ग के सदृश है।

१६—विजानीहि आर्य्यान् ये च दस्यवः बर्हिष्मते रन्धया शासद् अव्रतान् शाकी भव यजमानस्य चोदिता, विश्वा इत् ताते साधमादेषु चाकना (ऋ १।५१।८

अर्थः—हे परम ऐश्वर्यवान ! तू आर्यों को और जो अनार्य्य (आर्य्य नही) है। उनको जानता है। इन सत्कर्म (यज्ञकर्म) न करने वाले (अनार्य्य) को शिक्षा करता हुआ यज्ञ कर्म (सत्कर्म) के लिये वश मे कर (अपना अनुयायीबना)। तू यज्ञ कर्म (सत्कर्म) करने वाले आर्य्य तथा अनार्य्य दोनो का प्रेरक (सहायक) और शक्तिदाता है। मै अबके सब ही कर्मों को हर्षोत्सवो (जातिसम्मेलनो) मे सुननाचाहता हूँ।

१७—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिष स्वजाते तयोः अन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति, अनश्नन् अन्यो अभि-

अर्थ-दो पंखी (जीवात्मा, परमात्मा) जो साथ रहने वाले और मित्र हैं एक वृक्ष (शरीर)का आँलिंगन किय हुए (स्व-स्वामी भाव से पकड़े हुए) हैं। उन में से एक (जीवात्मा) स्वादु (स्वादु अस्वादु) फल (कर्मफल) को खाता है। और दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ प्रकाशता है।

१८-अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता, नि अन्यं चिक्युः न निचिक्युः अन्यम् ॥२॥ (ऋ १।१६४।३८)

अर्थ-नमरने वाला (जीवात्मा) मरने वाले (मन) के साथ एक स्थान (स्थूल शरीर) में रहता हुआ, ईश्वरीय सृष्टी निर्माण शक्ति (महामाया प्रकृति) से पकड़ा हुआ (वश में किया हुआ) कभी नीचे जाता है कभी ऊपर आता है। वे दोनो (आत्मा, मन) सदा साथ रहने वाले सब ओर जाने वाले और सर्वत्र जाने वाले हैं। उन में से एक (मन) को सब जानते हैं। दूसरे (आत्मा) को कोई नहीं जानते हैं ॥२॥

अर्थ–हे ब्रह्माण्ड के स्वामी तेरा स्वरुप पवित्र और विस्तार वाला (व्यापक) है। तुझ समर्थ ने हम सब के शरीरों को सब ओर से (भीतर बाहिर सब ओर से) व्याप्त किया है। जिस ने अपने शरीर को साधनो की भट्टी में तपाया नहीं, जो अभी कच्चा है वह तेरे उस स्वरुप को नहीं प्राप्त होता, जो साधनो की भट्टी में पके हुए और संसार यात्रा का धुरा (जूला) उठाये हुए हैं वे ही तेरे उस स्वरुप को प्राप्त होते है ।

२–न तम् अंहो न दुरतिं कुतश्चन न अरातयः तितिरुः न द्वयाविनः। विश्वाः इद् अस्माद् ध्वरसो विबाध से, यं सुगोपाः रक्षसि ब्रह्मस्पते !(ऋ० २।२३।५)

अर्थ–न उसको दुख सताता है, न पाप, न किसी ओर से (बाहर से अथवा भीतर से) भी शत्रु और न दुहरी (मन से दुसरी, वाणी से दूसरी) बात करने वाले उस को सताते हैं सब ही सताने वालो (दुःख देने वालों) को तू इससे दूर करता है, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी ! अच्छा रखवाला (अच्छी तरह रक्षा करने वाला) तू जिसकी रक्षा करता है ॥२॥

३–विश्वानि देव ! सवितः ! दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तत् नः आसुव ॥१॥ (ऋ० ५।८२।५)

अर्थ–हे अंतर्यामी रुप से सर्वज्ञ द्योत मान (प्रकाश मान) हे जगदुत्पादक हम से सब पापों (पाप कर्मों) को परे फेंक (दूर कर)। जो शुभकर्म (पुण्य) है वह हमारे सामने कर ।

५-तत् सवितुः वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमम्, तुरं भगस्य धीमही ॥ (ऋ ५।८२।१)

अर्थ-हम सविता (जगदुत्पादक) देवै के उस धन को मांगते हैं जो भोगने योग्य है। हम ऐश्वर्यमूर्ति सविता देव के सब से बढ़ कर सब को पुष्ट करने वाले दोषों के नाशक उत्तम धन का चिन्तन (स्मरण सदा) करते है।

६-तत् सवितुः वरेणयं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात: ॥ (ऋ ३।६२।१०)

अर्थ-हम उस सवितादेव के सब से श्रेष्ठ तेजोमय स्वरुप काचिन्तन करते हैं। जो हमारी बुद्धि यों को प्रेरे (भले कर्मो में लगायो।

७-आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैः अद्या वृणीमहे । सत्य-सवं सवितारम् ॥ (५।८२।१४)

अर्थ -आज हम सब के उपास्य देव श्रेष्ठों के पालक को सुन्दर वचनो (स्तुतिवचनों) से भेजते है। सो सत्यका पक्ष पाती और जगत का उत्पाधक है।

८-मृत्योः पदं योपयन्तो यद् एत द्राघीयः आयुः प्रतरं दधानाः । आप्यायमानाः प्रजया धनेन, शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियास ॥ (ऋ १०।१८।२)

१९-त्रिपाद् उर्ध्वः उद्+ऐत् पुरुषः, पादो अस्य इह
वत् पुनः ततो विश्वङ् वि+अक्रामत् साशनानशने अभि॥

(ऋ १०।९०।४)

अर्थ—तीन पादवाला पुरुष (तीन पादों से पुरुष) सब लो
के ऊपर रहा हुआ उत्कृष्ठताको प्राप्त (अपने सबसे ऊंचे स
में देदीप्यमान है, और इस (पुरुष) का एक पाद (भाग-चौ
हिस्सा) यहां (इस जड़-चेतन सब जगतमें) है। उस (एक पाद)
उसने सब जगत को सब ओर से नापा, तो भी खानेवाले (सा
और न खाने वाले जड़ चेतन सब जगत् से ऊपर रहा है! ॥४

२०-तस्माद् विराड् अजायत विराजो अधि पुरुषः।
जातो अति+अरि-च्यत् पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः ॥१॥

अर्थ—उस (पुरुष) से विराट (द्यु-पृथिवी आदी सब जग
ब्रह्मांड) उत्पन्न हुआ, विराट्से पीछे मनुष्य यथाक्रम उत्प
हुआ (बहुत बढा) पुत्र पौत्र आदी रूपसे बहुत वृद्धिको प्राप्त हुआ
पीछे उस (मनुष्य) ने अपने सुख,पूर्वक रहनेके लिये भूमि (खेतों
को और नगरोको बनाया ॥५॥

२-तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुः तस्माद् अजायत ॥
(ऋ १०।९०।६)

अर्थ—उस यज्ञ (सृस्टि यज्ञ) से ही जिस में सब ऋतुए सामग्री रुप से होमी गई ऋचामंत्र (गानेविना पढ़े जाने वालेमंत्र) और साम मंत्र (गाकर पड़े जाने वाले मंत्र) उत्पन्न हुए। उसी से गायत्री अदि सात छन्द उत्पन्न हुए और उसी से यजुमन्त्र उत्पन्न हुए ॥

३-यत् पुरुषं वि+अदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किम् अस्य कौ बाहु, कौ ऊरू पादौ उच्येते ॥ (ऋ १०।९०।११)

अर्थ जब पुरुष(परमात्मा)को उसके संकल्पानुसार देवताओं ने अनेकरुप किया तब कितने प्रकार से उसे विकल्पा (मनुष्यसृष्टि और दूसरी सृष्टि को लेकर उसके किन किन अंगो की कल्पनाकी)कौन उस का मुख कल्पित हुआ कौन भूजायें, कौन राने और कौन पाओं कल्पना से कहे जाते हैं। (कल्पना किय गये)॥

४-ब्राह्मणो अस्य मुखम् आसीत् , बाहू राजन्य कृतः ।
ऊरू तद् अस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत ॥
(ऋ १०।९०।१२)

अर्थ-ब्राह्मण इस (पुरुष)का मुख कल्पितहुआ,-दोनो भुजा क्षत्रिय कल्पित किया गया। इसकी दोनों रानें वह कल्पित हुआ जोवैश्य कहा जाता है और पाओं रुप से (पाओं) शूद्र (दोनों प्रकार का शूद्र) कल्पित हुआ ॥

५—चन्द्रमाः मनसो जातः, चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखाद् इन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद्वायुः अजायता ॥३॥

(ऋ १०।६०।१३)

अर्थ—चन्द्रमां मन रुप से (मन) कल्पित हुआ, सूर्य्य नेत्र-रुपसे (नेत्र) कल्पित हुआ। मुख रुप से (मुख) इन्द्र (जल) और अग्नि, दोनो कल्पित हुए और प्राण रुप से (प्राण) वायु कल्पित हुआ ॥

६—नाभ्या आसीद् अंतरिक्ष, शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्, तथा लोकांन अकल्पयन् ॥

(ऋ १०।६०।१४)

अर्थ—अतरिक्ष नाभी (उदर) रूप से कल्पित हुआ, द्यौ सिर रुप से (सिर) कल्पित हुआ। भूमि पाओं रुप से (पाओं) और दिशयें कान रुप से (कान) कल्पित हुई इस प्रकार सूर्य्य चन्द्र आदि के साथ तीनों लोकों को अङ्ग रुप से देवताओं ने कल्पा ॥

७—सप्त अस्य आसन् परिधयः त्रिसप्त समिधाः कृताः।
देवाः यद् यज्ञं तन्वानाः अवघ्नन् पुरुषं पशुम् ॥

हुए देवताओं ने खूटें के साथ पशु की नाई उसके साथ मनुष्य को यजमान रुप से बांधा ॥

८-यज्ञेन यज्ञम् अजयन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमानि आसन् । ते ह । नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ (ऋ १०।९०।१६)

अर्थ-यज्ञरुप (यज्ञ के आत्मा) मनुष्य से देवताओं ने जिस लिए आरम्भ में सृष्टियज्ञ को पूरा किया इसलिए वे (यज्ञ) मनुष्यों के लिए मुख्य धर्म (कर्त्तव्य कर्म) हुए । जो मनुष्य इस मुख्य धर्म को करते हैं वे निश्चय लोक में महिमा (विभूति) वाले हुए अंत में उस दुःख रहितस्थान (पूर्ण पुरुष परमात्मा) को प्राप्त होते हैं जहां सृष्टियज्ञ के साधने (सागों पांग पूरा करने वाले) पहले देवता इश्वरीय सृष्टि निर्माण शक्तियें रहते हैं ।

९-हिरण्यगर्भः सम्+अवर्तत अग्रे, भूतस्य जातः पतिः एकः आसीतः । स दाधार पृथिवीं द्याम उत इमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।१५)

अर्थ—सृष्टि से पहले हिरण्यगर्भ (सूर्य्या,आदि ज्योतिर्मय समस्त जगत, नकशे के तौर पर सूक्ष्म रुप से जिसके गर्भ में भीतर है वह परमात्मा) था, वह सृष्टि संकल्प से प्रकट होता हुआ उत्पन्न हुए सब सगत का अद्वितिय स्वामी हुआ । उसने पृथिवी लोक को और अन्त रिक्षलोक के सहित इसद्यु लोक को धारण किया, हम सब उस पुजा के स्वामी देवों के देव हिरण्यगर्भ की हविर्यज्ञ मे श्रद्धा भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं ॥ (ऋ-१०।१२१।१)

१०-यः आत्मदाः वलदा यस्य विश्वे उपास्ते प्रशिषं यस्य देवाः यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय देवा हविषा विधेम(ऋ० १०।१२१।२)

अर्थ—जों प्राण (जीवन) दाता और वलदाता है जिस के प्रशासन (जबरदस्त हुकम) को प्राणी अप्राणी सब मानते, हैं और जिसके प्रशासन को सब विद्वान मानते हैं। जिस के आधीन सब का जीना और सब का मरना जिस के आधीन है हम उस सब प्रजा के स्वामी देवो के देव हिरण्यगर्भ की हविर्यज्ञ से श्रद्धा पूर्वक पूजा करते हैं ॥

११-यः प्राणतो निमिषतो महित्वा, एकः इद् राजा जगतो बभूव। यः ईशे अस्य द्विपदः चतुष्पदः, कस्मै देवाय

अर्थ-जों अकेला ही अपने महत्व से प्राण न क्रिया करने वाले (स्वास, प्रश्वास लेने वाले) निमेष क्रिया करने वाले सब जगत कास्वामी है जों दो पाओं वाले और चार पाओं वाले इस समस्त प्राणिवर्ग का ईशनकर्ता (शासन करने वाले) अर्थात नियन्ता हैं, हम उस सब प्रजाके स्वामी देवों के देव से हिरण्यगर्भ की हविर्यज्ञ से श्रद्धा भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं।

अर्थ—प्राणियों की रक्षा के लिए थामे हुए द्यौ और पृथिवी दोनों मन से काँपते हुए जिसकी ओर देखते हैं। जिसके अधीन उदय होता हुआ सूर्य चमकता है, हम उस सब प्रजा के स्वामी देवों के देव हिरण्यगर्भ की हविर्यज्ञ से पूजा श्रद्धा भक्ति पूर्वक करते हैं।

१५—मा नो हिंसीत् जनिता यः पृथिव्याः, यो वा दिवं सत्य-धर्मा जजान। यश्च अपः चन्द्राः बृहतीः जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (ऋ० १०।१२१।७)

अर्थ—वह मत हमको मारे (दुःखी करे) जो पृथिवी का उत्पन्न करने वाला है और जिस अटल नियमों वाले ने द्यौ को उत्पन्न किया है। और जिसने ह्लाद (हर्ष) के देने वाले बड़े जलों (नदियों) को उत्पन्न किया है हम उस सब प्रजा के स्वामी सब देवों के देव हिरण्यगर्भ की हविर्यज्ञ से श्रद्धाभक्ति पूर्वक पूजा करते हैं ॥७॥

१६—प्रजापते! न त्वद् एतानि अन्यो, विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामाः ते जुहुमः तन् नो अस्तु, वयं स्याम पतयो रयीणाम ॥ (ऋ १०।१२१।१०)

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामी! तुझ से भिन्न दूसरा कोई उत्पन्न हुए उन इन सब पदार्थों को नहीं घेरे हुए (अपने शासन में नहीं कियहुए) है। हम जिस (ऐश्वर्य) की कामना वाले हुए

आपको हव्य पदार्थ देते (हव्य पदार्थ से अपनी श्रद्धा भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं) वह (ऐश्वर्य हमको हो (प्राप्त हो), हम अनेक धनो के स्वामी होवें

१७-श्रद्धया अग्नि समिध्यते, श्रद्धया हूयते हवि। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि, वचसा वेदयामसि ॥ (ऋ १०।१५१।१)

अर्थ-श्रद्धा से अग्नि प्रदीप्त की जाती है, श्रद्धा से हवि होमी जाती है। श्रद्धा को ऐश्वर्य, के सिर पर ले जाने वाली हम वचन से (उच्चस्वर से) प्रकट करते हैं ॥

१८-श्रद्धां देवा यजमाना:, वायुगोपा:, उपासते श्रद्धां हृदय्य याऽऽकूत्या, श्रद्धया विन्दते वसु ॥२॥ (ऋ १०.१५१।४)

अर्थ-श्रद्धा को विद्वान और वायु की शुद्धि से प्रजा रक्षक यज्ञकर्ता सभी मानते हैं मनुष्य हृदय के शुद्धि सङ्कल्प से श्रद्धा को और श्रद्धा से धन को ले लेता है ॥२॥

१९-श्रद्धा प्रातर हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापय इह न ॥३॥ (ऋ १०।१५११५)

अर्थ-श्रद्धा को हम प्रातकाल में बुलाते है, श्रद्धा को मध्यान्ह काल में बुलाते हैं श्रद्धा को सूर्य्य के अस्तकाल में बुलाते हैं। हे श्रद्धा तू हम को यहाँ श्रद्धावाला कर ॥३॥

२०-संगच्छध्व संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् देवाः भागं यथा पूर्वे संजानानाः उपासते ॥१॥ (ऋ १०।१५१।१)

ऋतु हैं, आश्विन और कार्तिक दोनों शरद् ऋतु हैं। मार्ग शीर्ष (मग्धर) और पौष दोनों हेमन्त ऋतु हैं, माघ और फाल्गुन दोनों शिशुर ऋतु हैं ॥

१२–आ ब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्टे राजन्यः शूरः इषव्यो अतिव्याधि महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुः वोढा अनड्वान्, आशु सप्तिः, पुरंधिः योषा, जिष्णु रेथेष्ठा सभेयो, युवा अस्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्तां, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ (तै०सं० ७।५।१८)
(यजु० २२।२२)

अर्थ–हे सबसे बड़े ! हमारे देश में ब्राह्मण वेद आदि समस्त विद्याओं से देदीप्यमान उत्पन्न हों, क्षत्रिय पराक्रमी, शस्त्र अस्त्र चलाने में निपुण, शत्रुओं को अत्यन्त पीडित करने वाला और हजारों से अकेला युद्ध करने वाला उत्पन्न, हो गौ दूध देने वाली, बैल बोझ ढोने वाला घोड़ा शीघ्र चलने वाला, और स्त्री बहुत बुद्धि वाली उत्पन्न हो प्रत्येक मनुष्य विजय प्राप्त करने का स्वभाव रखने वाला, रथों (रणमोटरों व ऐरोप्लेनों) में बैठने वाला और सभा में प्रवीण उत्पन्न हो, इस यज्ञ करता के घर में विद्यायौवन–सम्पन्न और शत्रुओं को परे फैंकने वाला पुत्र उत्पन्न हो। हमारे देश में मेघ इच्छा इच्छा पर (जब–२ आवश्यकता हो तब तब) बरसे, हमारे देश में गेहूँ, जौ चणा, धान्यादि समस्त औषधियां (खेतियें) फल वाली पकें हुई

हमारे देश में प्रत्येक मनुष्य का योग (अलब्ध का लाभ) और क्षेम (लब्ध का संरक्षण) उसके उपयोग के लिए पर्य्याप्त हो ॥

१३-यथा इमां वाचं कल्याणीम आवदानि जनेभ्यः, ब्रह्म राजन्याभ्यां, शूद्राय च अर्याय च, स्वाय च अरणाय च, प्रियो देवाना दक्षिणाय दातुः इह भूयासम्, अयं मे कामः समृध्यताम्, उप मा अदोनमतु ॥ (यजुः २६।२)

अर्थ-हे ब्राह्मण ! (वेद आदि समस्त विद्याओं के पारंगत विद्वान) जैसे मैं इस कल्याणी (लोक परलोक दोनों में सुख देने वाली) वाणी को प्रकट रूप से कहता हूँ वैसे ही सब मनुष्यों को ब्राह्मण क्षत्रिय को, शूद्र और वैश्य दोनों को अपने (समान धर्म पुस्तक वाले) और बेगाने (भिन्न धर्म पुस्तक वाले) दोनों को कहो इस कामना से कि मैं यहां (इस लोक में) सबके सामने इस कल्याणी वाणी के यथावत कहने से विद्वानों का और दान के देने वालों का प्यारा (स्नेहपात्र) होवु और यह मेरी कामना अच्छी सिद्ध हो जिससे मुझे परलोक में इस कल्याणी वाणी का मूल वक्ता वह (ब्रह्म) प्राप्त हो ॥

१४-वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, आदित्यवर्णां तमसः परस्तातः तम एव विदित्वा अति मृत्युम एति,
पन्थः ! विद्यते अयनाय ॥ (यजुः ३१।१८)

मैं इस सब से बड़े सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को जो सूर्य की नाईं प्रकाश स्वरूप और अंधकार (नाम रूप प्रकृति) से परे है जानता हूँ। उस ही को जान कर मनुष्य मृत्यु (जन्म मरण)

बढ़ाने वाले ! उस परम (उत्कृष्ठ) सुखमय स्वरूप से हमारे सामने प्रकाशित है ।

६–वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुः ते शुन्धामि, श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढं ते शुन्धामि पायु ते शुन्धामि चरित्रान् ते शुन्धामि (यजु० ६।१४)

अर्थ–तेरे वाणि (मन और वाणि) को शुद्ध करता हूं तेरे प्राण (घ्राण) को शुद्ध करता हूं तेरे नेत्रों को शुद्ध करता हूं तेरे कानों को शुद्ध करता हूं तेरे नाभि (जठराग्नि) को शुद्ध करता हूं तेरे उपस्थेन्द्रय को शुद्ध करता हूं तेरे अपान वायु को शुद्ध करता हूं तेरे पाओ को शुद्ध करता हूं ॥

७–मनः ते आप्यायतां वाक् ते आप्यायतां प्राणः ते आप्यायतां चक्षुः ते आप्यायतां श्रोत्रं ते आप्यायतां, । यत् ते क्रूरं यद् आस्थितं तत् ते आप्यायतां, । निष्ट्यायतां, तत् ते शुध्यतुशम् अहोभ्य ॥ (ऋ यजु ६।१५)

अर्थ–तेरा मन उन्नत (वृद्धि को प्राप्त) हो तेरी वाणी उन्नत हो, तेरा प्राण (घ्राण) उन्नत हो, तेरा नेत्र उन्नत हो, तेरा कान उन्नत हो, । जो तेरा क्रूर कर्म (अशुद्ध मनुष्य के सम्बन्ध से अभ्यस्त क्रूर कर्म) है वह दूर हो और जो सविता देव का आज्ञा किया हुआ कर्म तुमने स्वीकार किया है वह तेरा उन्नित को प्राप्त हो, दृढता को प्राप्त हो, और जो जो तेरा अशुद्ध हुआ है वह सब शुद्ध हो तुम्हारी आयु के दिन सुख कारी हों ।

८- मनो मे तर्पयत, वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत, चक्षुः मे तर्पयत, श्रोत्रं मे तर्पयत, आत्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत, पशून् मे तर्पयत, गणान् मे तर्पयत, गणाः मे मा वितृषन् ॥ (यजु ६।३१)

अर्थ–हे देवताओ मेरे मन को तृप्त करो, मेरी वाणी को तृप्त करो मेरे प्राण (घ्राण) को तृप्त करो, मेरे नेत्र को तृप्त करो, मेरे कान को तृप्त करो, मेरे आत्मा को तृप्त करो, मेरी प्रजाको तृप्त करो, मेरे पशुओं को तृप्त करो, मेरे बन्धुओं तथा भृत्यों को तृप्त करो मेरे बन्धु और भृत्य मत संसारिक पदार्थों की भूख से भूखे होवें ॥

९–देव कृतस्य एनसो अवयजनम् असि, मनुष्य कृतस्य ऐनसो अवयजनम असि, पितृकृतस्य ऐनसो अवयजनम् असि, आत्मकृतस्य ऐनसो अवयजनम असी, एनसः एनसो अवयजनम् असि। यच्च अहम् एनो विद्वान चकार यच्च अविद्वान, तस्य सर्वस्य एनसो अवयजनम असि ॥

(यजु० ८।१३)

अर्थ–हे सब के स्वामी परमात्मा! तू देवताओं में किए हुए अपमान रूपी पाप का क्षमा करने वाला है मनुष्यों (मनुष्यमात्र) में किये हुए असहिष्णुता रूपी पाप का क्षमा करने वाला है पितरों में किये हुए आज्ञा भंग रूपी पाप का क्षमा करने वाला है, मन में किये हुए अनिष्टचिन्तनरूपी पाप का क्षमा करने वाला है। पाप, पाप का (हरएक पाप का) क्षमा करने वाले है। और जो पाप मैंने जानबूझ कर किया है और जो मैंने

वाले सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं। इसको न कोई ऊपर से न नीचे से और नही कोई बीच में पकड़ सकता है ॥

अष्टमो अध्याय

१–एष उ ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। सः एव जातः स जनिष्यमाणः, प्रत्यङ् जनाः! तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ (यजुः ३२।४)

अर्थ–यह ही प्रसिद्ध देवो का देव सब बड़ी दिशाओं को व्याप्त करके स्थित है वह हीं सब से प्राचीन आरम्भ में सृष्टि कल्प से उत्पन्न हुआ है और वही उत्पन्न हुए सब पदार्थों के मध्य में भीतर स्थित है। वह ही उत्पन्न हुआ पदार्थ और उत्पन्न होने वाला पदार्थ भी वही है। हे मनुष्यो सब मुखों (द्यु लोकों और पृथ्वी लोकों) वाला वह सामने (जधर देखो उधर सामने) स्थित (मौजूद) है ॥

२–यस्मात् जातं न पुरा किंचन एव, यः आबभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संरराणः, त्रीणि, ज्योतिषं सचते स षोडशी॥ (यजुः ३२।५)

अर्थ-जिसके पहले कुछ भी प्रकट निश्चय नहीं था, जो अपने संकल्प से सब पदार्थों को बनाकर घेरे हुए है। वह सोलह कला वाला प्रजापति अपनी सब प्रजा के साथ समान रूप से रमण करता हुआ (खुशी का खेल खेलता हुआ) उसके सुख के लिए सूर्य, विद्युत (बिजली) और अग्नि इन तीन ज्योतियों को बनाता है ॥

३–वेनः तत् पश्यत निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवति एकनीडम् । तस्मिन इदं सं च वि च एति सर्वं, स ओतश्च प्रोतश्च विभु प्रजासु ॥ (यजुः ३२।८)

अर्थ–विवेकी मनुष्य उस सत् (तीनों कालों में नाश न होने वाले ब्रह्म) को देखता है जो हृदय-गुफा में स्थित है और जिस में से सब जगत अद्वितिय आश्रय वाला हुआ विद्यमान है। उसमें ही यह सब जगत प्रलय काल में एक हो जाता और उत्पति काल में फिर अनेक हो जाता है, वह विभूति (ऐश्वर्य) वाला सब प्रजाओं में ताने वाने की नाईं निश्चय ओतप्रोत है ॥

४–प्र तद् वोचेद्, अमृतं नु विद्वान, गन्धर्वो धाम, विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहाऽस्य, यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत ॥ (यजुः ३२।९

अर्थ–वेदवाणी का धारने वाला (ठीक ठीक जानने वाला) विद्वान उस अमृत ब्रह्म का सदा प्रवचन (आख्यान) करे, जो सब का अधिष्ठान (आश्रय) सब की हृदय गुफा में विद्यमान और सत्य है। इस (अमृत ब्रह्म) के एक पाद (चौथा हिस्सा) जगतरूप से प्रकट होने पर भी तीन पाद गुफा में स्थित के समान हैं (अप्रकट हैं) जो इस एक पाद के सहित उन तीनों पादों (पूर्ण ब्रह्म) को जानता है वह पिता का पिता (साक्षात्त ब्रह्म) है ॥

५–स नो बन्धुः जनिता स विधाता, धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवाः अमृतम आनशानाः, तृतीये धामन् अधि+ऐरयन्त ॥ (यजुः ३२।१०)

अर्थ-वह (ब्रह्म) हमारा बन्धु (प्रत्येक कार्य में सहायक) हमारा पिता और सुखदुःख का बनाने वाला है वह सब लोकों को और पदार्थों को जानता है। जिसे व्यक्त अव्यक्त से तीसरे व्यक्त अव्यक्त के लोक (आश्रय) ब्रह्म में स्थिती वाले विद्वान अमृत जीवन को भोगते हुए यथाधिकार कर्मों में प्रवृत होते हैं।

६-परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्, परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उप स्थाय प्रथम जाम् ऋतस्य, आत्मना आत्मान मभिस विवेश ॥ यजुः ३२।११)

अर्थ-सब प्राणियों कि परीक्षा करके, सब लोकों की परीक्षा करके सब दिशाओं और उपदिशाओं (अप्राणी पदार्थों) की परीक्षा करके (यह स्वतः सिद्ध अर्थात अपने आप बने हुए हैं। अथवा इन का बनाने वाला कोई दूसरा है इस प्रकार ठीक ठीक जांच करके) प्रथम समाधि (समप्रज्ञात समाधि) में अर्थात मनकी एकाग्रावस्था में उत्पन्न होने वाली सत्य ब्रह्म की (सत्यब्रह्म को विषय करने वाली) बुद्धि (ऋतंभरा प्रज्ञा) को प्राप्त करके विद्वान अपने आत्मा से परमात्मा (ब्रह्म) में प्रवेश करता है ॥

७-परि द्यावा पृथिवी सद्यः इत्वा, परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य, तद् अपश्यत् तद् अभवत् तद् आसीत ॥ (यजुः ३२।१२)

अर्थ-द्यु लोक तथा पृथवी लोक, दोनो की झटिति (मरने के पहले) परीक्षा करके रात्री में दृष्यमान सब तारा गणों की परीक्षा करके उनकी दिशाओं तथा उपदिशाओं की परीक्षा

करके दृश्य अदृश्य सब पदार्थों की परीक्षा कर के सद्‌ब्रह्म के के फैलाये हुए मायाजाल को चीर कर (फाड़कर) उस (सद्‌ब्रह्म) को देखता (साक्षात करता) है और वही हो जाता है क्यों कि वही था ॥

८–गर्भे नु सन् अनु एषाम अवेदम, अहं देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मा पुरः आयसीः अरक्षन, अध श्येनो जवसा निर्+अदीयम् ॥ (ऋ० ४।२७।१)

अर्थ–गर्भ (गार्हस्थ) में होते (रहते) हुए ही मैंने इन (वेदवेत्ता) विद्वानों के उपदेशानुसार योगसाधन करके अपने सब जन्मों को जाना है । इस अनेक लोहे के किलों ने मुझे चिरकाल तक बन्द रखा अब मैं वेग (तेजी) से बाज की नाई ज्ञानास्त्र से इन सब को छिन्न भिन्न करके निकल आया हूँ ।

९–दृते ! दृंह मा, मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्य अहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे ॥ (यजु. ३६।१८)

अर्थ–हे अज्ञान नाशक ! मुझे ज्ञान में दृढकर जिससे सब प्राणि मुझ को मित्र की दृष्टि से देखें । मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखु, हम सब मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखें ॥

१०–यावती द्यावा पृथिवी यावच्च सप्त सिंधवो वितस्थिरं तावन्तम् इन्द्र ! ते ग्रहम् ऊर्जा गृह्णामि अक्षितं मयि गृह्णामि अक्षितम २ ॥ (यजुः ३८।२६)

अर्थ–जितने बड़े द्यौ और पृथिवी, दोनों हैं और जितनी ड़ी सिंधु आदि सातों नदियें, हैं। हे इन्द्र! उतना बड़ा तेरा स (आनन्द) से भरा दानपात्र है। उस अखुद्र को मैं सब के लेए पकड़ता हूं। उस अखुद्र को मैं अपने लिए पकड़ता हूं।

११–सविता प्रथमे अहन्, अग्निः द्वितीये, वायुः तृतीये, आदित्यः चतुर्थे, चन्द्रमाः पंचमे, ऋतु षष्ठे, मरुतः सप्तमे, बृहस्पतिः अष्टमे, मित्रो नवमे, वरुणो दशमे, इन्द्रः एकादशे, विश्वेदेवाः द्वादशे ॥ (यजुः ३९।६)

१२–यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्च अधितिष्ठति । स्वर यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्व १०।८।३२)

अर्थ–जो भूत (अतीत) और भविष्यत् दोनो का और जो वर्तमान सब जगत का अधिष्ठाता है। और केवल (दुःख से (अमिश्रित) सुख (आनन्द) जिसका स्वरुप है, उस सब से बड़े ब्रह्म (परमात्मा) को नमस्कार है ॥

१३–यस्य भूमिः प्रमा, अन्तरिक्षम्, उतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्धानं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्व १०।७।३२)

अर्थ–जिसका पांओं पृथ्वी और पेट अंतरिक्ष है, जिसने द्यौ को अपना सिर बनाया है, उसे सब से बड़े ब्रह्म को नमस्कार है ॥

१४–यस्य सूर्यः चक्षुः, चन्द्रमाश्च पुनर्णवः । अग्नि यश्चक्रे आस्यं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ (अथर्व १०।७।३३)

अर्थ–सूर्य और फिर फिर नया उदय होने वाला चन्द्रमा जिसकी आँख है । जिसने अग्नि को अपना मुख बनाया है उस सब से बड़े ब्रह्म को नमस्कार है ।

१५ -यः श्रमात् तपसो जातो, लोकान सर्वान समानशे । सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
(अथर्व १०।७।३६)

अर्थ–जो सृष्टि संकल्प रूप प्रयत्न से प्रकट हुआ सब लोकों को भीतर बाहर व्याप्त किय हुए है । जिसने अकेले प्रेम को अपने प्राप्त करने का साधन बनाया है, उस सब से बड़े

३–आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः । प्रजापतिः विराजति विराड् इन्द्रो भवद् वशी ॥ (अथर्व ११।७।१६)

अर्थ–ब्रह्मचारी आचार्य होता है। ब्रह्मचारी प्रजा (पुत्र पौत्र आदि प्रजा) का स्वामी होता है । प्रजा का स्वामी हुआ ब्रह्मचारी लोकों में खूब चमकता हुआ बड़े ऐश्वर्य वाला और सब को वस (काबू) में रखने वाला होता है

४–ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणम् इच्छते ॥ (अथर्व ११।७।१७)

अर्थ–ब्रह्मचर्य रूपी तप से राजा हुआ ब्रह्मचारी राज्य की खूब रक्षा करता है । ब्रह्मचर्य रूपी तप से आचार्य हुआ ब्रह्मचारी मनुष्यमात्र के ब्रह्मचारी होने की इच्छा करता है ।

५–ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युम् उपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वर आभरत् ॥ (अथर्व ११।७।१९)

अर्थ–ब्रह्मचर्य रूपी तप से इन्द्रियें (ब्रह्मचारी की आंख कान इत्यादि इन्द्रियें) मृत्यु को अन्धा बहरा करने वाले रोग मात्र को) परे फैंकती है । इन्द्रियों का स्वामी (आत्मा) ब्रह्मचर्यरूपी तप से निश्चय इन्द्रियों के लिए शरीर को स्वर्ग (स्वस्थ) बनाता है ॥

६–मेधाम् अहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मभूताम् ऋषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभीः देवानाम् अवसे हुवे ॥

(अथर्व ६।११।१०८)

अर्थ–मैं देवताओं के मध्य (सब देवताओं के सामने) उस मेधा (बुद्धि) को जो सब से श्रेष्ठ वेदाआदि विविध विद्याओं वाली,

विद्याओं के वेत्ताओं (ब्राह्मणों) से प्रीति की गई मन्त्रद्रष्टा ऋषियों से स्तुति की गई ब्रह्मचारियों से अच्छी तरह पान की गई है, अपनी तथा अपनी भूमि माता की रक्षा के लिए बुलाता हूँ।

७-यां मेधाम् देवगणाः पितरश्च उपासते । तया माम् अद्य मेधया अग्ने मेधाविनम् कुरु ॥ (यजुः ३२।१४)

अर्थ-जिस मेधा का सब विद्वान् और पितर (हमारे पूर्वपुरुष) आदर करते हैं हे अग्नि ! उस मेधा से आज मुझे मेधा वाला कर ।

८-मेधां मे वरुणो ददातु मेधाम् अग्नि प्रजापतिः । मेधाम् इन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे ॥

(यजुः ३२।१५)

अर्थ-दुःख निवारक मुझे मेधा दे, सबका अग्रणी मुझे मेधा दे प्रजा का स्वामी मुझे मेधा दे । परमऐश्वर्यवान और का प्राण और सबको बनाने वाला परमात्मा मुझे मेधा (बुद्धि) दे ।

९-जितम् अस्माकम् उद्भिन्नम् अस्माकम् ऋतम् अस्माकं तेजो अस्माकं ब्रह्म अस्माकं स्वर अस्माकं यज्ञो अस्माकं पशवो अस्माकं प्रजा अस्माकम् वीराः अस्माकम् ॥

(अथर्व १६।८।१)

अर्थ-जीता हुआ धन हमको हो उत्पन्न किया हुआ (कमाया हुआ) धन हमको हो सत्य हमको तेज हमको विद्या हमको सुख हमको यज्ञ हमको पशु हमको प्रजायें हमको और वीर पुत्र पौत्र हमको हो ।

१०-भद्रम् इच्छन्तः ऋषयः स्वर्विद तपो दीक्षाम् उपनिषेदुः अग्रे ततो राष्ट्रं बलम् ओजश्च जातं तद् अस्मै देवाः उपसंनमन्तु ॥ (अथर्व १६।४१।१)

अर्थ-देश का कल्याण (सुख) चाहते हुए सुख और सुख साधनों को जानते हुए ऋषी पूर्वकाल में तप और दिक्षा (तप के नियमों); को प्राप्त हुए (ऋषियों ने तप और दीक्षा का ग्रहण किया उस (तप और दीक्षा) से राज्य (राज्यसुख) और उसका साधन बल तथा तेज प्राप्त हुआ इसलिये देश का कल्याण चाहने वाले विद्वान इस साधन (तप और दीक्षा रुपी साधन) की ओर झुके (विषेप ध्यान दें)

११-प्रबोधय उषः। पृणतो मघोनि, अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु। रेवद् उच्छ मघवद्भ्यो मघोनि। रेवत स्तोत्रे सूनृते। जारयन्तीः ॥४॥ (ऋ० १।१२४।१०)

अर्थ-हे उषा तू अर्थियों के मानों को दान से भरने वालों को जगा हे स्वास्थय धनवाली जो अज्ञानी व्यवहारी (कामना से दान देने वाले) हैं, वे सोवें हे धनवाली तू निष्काम-भाव से दान देने वाले धनवानों के लिये धनवाली हुई उदय हो हे सची और मीठी बोलियों वाली सब से जगतगुरु परमात्मा की स्तुति करती हुई स्तोता के लिये धनवाली हुई उदय हो ॥४॥

१२-एकं वै इदं विबभूव सर्वम् (ऋ० वा० ८।५८।२)

अर्थ-एक ही यह सब कुछ हुआ

१३–एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति (ऋ १।१६४।४६)

अर्थ–एक सत् को बुद्धिमान बहुत प्रकार (अनेक नामों) से कहते हैं।

१४–एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति (ऋ १०।११४।५)

अर्थ–एक होते हुऐ की अनेक प्रकार से कल्पना करते हैं।

१५–इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपः ईयते (ऋ ६।४७।१८)

अर्थ–इन्द्र अपनी शक्तीयो से वहु रुप हुआ प्रतीत होता है।

१६–रूपं रूपं मघवा बोभवीति (ऋ ३।५३।८)

अर्थ–पदार्थ पदार्थ (हर एक पदार्थ) इन्द्र हुआ है।

१७–स एव एकः एकवृद् एक एव (अथर्व १३।४।१२)

अर्थ–वह एक ही था एक हुआ अनेक है, फिर एक ही होगा।

१८–यः एकः इद् हव्य चर्षणीनाम् (अथर्व २०।२६।१)

अर्थ–जो एक ही सब प्रजाओं का पुकारने (प्रार्थना करने) योग्य है॥

१९–यः एकः इद् विदयते वसु (ऋ १।८४।७)

अर्थ–जो एक ही सबको धन देता है।

२०–सत्यम् अद्धा नकिः अन्यः त्वावान् (ऋ १।५२।१३)

अर्थ–ठीक सत्य है कि दूसरा कोई तेरे जैसा नही है

-न त्वावान् इन्द्र ! कश्चन, न जातो न जनिष्यते

(ऋ १।५२।१४)

अर्थ--हे इन्द्र कोई भी तेरे जैसा नही है न पीछे हुआ न
ो होगा

-त्वं हि शश्वतीनां पतिः राजा विशाम् असि

(ऋ ८।१५।३)

अर्थ--तू ही इन सनातनी प्रजाओं का पालक और राजा है

-इन्द्रो विश्वस्य राजति (यजु ३६।८)

अर्थ--इन्द्र सबका राजा है

-इन्द्रो राजा जगतः चर्षणीनाम् (ऋ ७।२७।३)

अर्थ--इन्द्र जगत का और सब प्रजाओ का राजा है

-इन्द्रो विश्वस्यदमिता विभीषणः (ऋ ५।३४।६)

अर्थ--इन्द्र सब दुष्टों का दबाने वाला और भयभीत करने
ा है ।

-इन्द्रो मुनीनां सखा (ऋ ८।१७।१४)

अर्थ--इन्द्र सज्जनों का मित्र है

-भद्राः इन्द्रस्य रातयः (ऋ ८।६२।२)

अर्थ--इन्द्र के दान मंगल रूप है

८--न तस्य प्रतिमा, अस्ति यस्य नाम महद् यशः

अर्थ--उसकी कोई प्रतिमा (प्रत्यक्ष मापने वाला) नही है
जिसका नाम बड़ा और यश बड़ा है ।

९-नहि नु अस्य प्रतिमानम् अस्ति (ऋ १४।४५।४)

अर्थ-निश्चय इसका कोई प्रतक्ष मापने वाला नही है।

१०-यत् चिकेत्, सत्यम् इत् तत् न मोघम् (ऋ १०।८५।६)

अर्थ-जो जनता है सत्य ही जनता है वह असत्य (झूठ) नही

११-यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः (ऋ १०।१२।१।२)

अर्थ-जिसके आधिन जीना और जिसके आधिन मरना है।

१२-शृणवन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः (ऋ १०।१३।१)

अर्थ-सब अमृत (ब्रह्म) के पुत्र सुनें।

१२-ये इत् तद् विदुः ते अमृतत्वम् आनशुः (ऋ १।२६४।२३

अर्थ-जो ही उसको जानते हैं वे अमर भाव (मोक्ष) को प्राप्त होते है।

१३-ये इत् तद् विदुः ते इमे समासते (ऋ १।१६४।३६)

अर्थ-जो ही उसको जानते है वे भली भाँती बैठ जाते हैं (आवागमन से छूट) जाते हैं ।

;-पश्यद् अक्षण्वान् न विचेतद् अन्धः (ऋ १।१६४।१६)

अर्थ-आंखोवाला (ज्ञान दृष्टी वाला) देखता है, अन्ध नही
ाता है।

ः-इमे चिद् इन्द्र ! रोदसी अपारे यत् संगृभ्णा काशिः
{ ते (ऋ ३।३०।५)

अर्थ-हे इन्द्र इन दूर पार वाले द्यौ और पृथ्वी दोनों को
ःसन्देह जोतूने ठीक ठीक पकडा हुआ है यह तेरी ही मुट्ठी है।

०-अशत्रुः इन्द्र ! जज्ञिषे (ऋ १०।१३३।२)

अर्थ--हे इन्द्र तू आरम्भ से ही शत्रु रहित प्रकट हुआ है

।-एको विश्वस्य भुवनस्य राजा (ऋ ३।४६।१)

अर्थ-तू अकेला सब जगस का राजा है

एकादशो अध्याय

१-अमेनान् चित् जनिवतः चकर्थ (ऋ ५।३१।२)

अर्थ-जो स्त्रियों वाले नही उनको तू निःसन्देह स्त्रियों वाला करता है ।

२-अवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् (ऋ १।३२।१२)

अर्थ-सातों नदियों को तूने चलने के लिये खोला है

३-युज्यो मे सप्तपदः सखाऽसि (अथर्व ५।११।६)

अर्थ-तू मेरा सात पाओं साथ चला हुआ योग्य मित्र है।

४-सदा ते नाम स्वयशो ! विवक्मि (ऋ ७।२२।५)

१३–विश्वानि देव ! वयुनानि विद्वान (ऋ १।१८।९।१)

अर्थ–हे देव । तू हमारे सब विचारों का जानने वाला है ।

१४–मा नो निद्रः ईशत्, मा उत जल्पिः (ऋ ८।४८।१४)

अर्थ–धर्म तथा बडो की निन्दा करने वाला मत हमारा ईश्वर (राजा) हो और मत व्यर्थ ताडने वाला ईश्वर हों

१५ मा नः स्तेनः ईशत् मा अघिशंस (ऋ २।४२।३)

अर्थ–मत चोर हमारा ईश्वर हो और मत पाप मयी (कपट भरी) आज्ञा करने वाला हमारी ईश्वर , हो

१६–विश्वा अवभूतु दुर्मतिः (ऋ १।१३१।४)

अर्थ–हमारी सब दुष्ट बुद्धी दूर हो

१७–भवा नः सुश्रवस्तमः (ऋ १।६८।१७)

अर्थ–हमारे लिये सबसे अच्छे बढिया यश का देने वाला हो

१८–मीढ्वः ! तोकायः तनयाय मृड् (ऋ २।३३।१)

अर्थ–हे प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ हमारे पुत्र के लिये और पौत्र के लिये सुखकारी हो

१९–गणानां त्वा गणपतिं हवामहे (ऋ २।२.३।१)

अर्थ–हम सब समूहों के मध्य में तुझ समूह पति को पुकारते हैं ।

२०–अग्ने । सख्ये मा रिषामा वयं तव (ऋ १।९४।१)

अर्थ–हे अग्नी हम तेरी मित्रता में मत दुखी होवे ।

१—विश्वानि अग्ने । दुरिताऽतिपर्षि (ऋ ५।३।१)

अर्थ—हे अग्नि हमको सब पापों से दूर लेजा ।

२—दामेव वत्साद् विमुमुग्धि अंहः (ऋ २।२८।६)

अर्थ—बच्छे से रज्जू (बांधने की रस्सी) की नाईं हमें पाप से छुड़ा ।

३—विश्वा अप द्विषो जहि (ऋ ६।१३।८)

अर्थ—सब द्वेषियों को दण्ड दे ।

४—विश्वां सम् अत्रिणां दह (ऋ १।३६।१४)

अर्थ—हमारे सब घातकों को दग्ध कर ।

५—तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम् (ऋ १०।३१।१)

अर्थ—हम सब पापों को तरे हुए हों ।

६—शं नः क्षेमे शम् उ योगे नो अस्तु (ऋ १।८६।८)

अर्थ—हमें क्षेम (प्राप्त के संरक्षण) में सुख हो, और हमें योग (अप्राप्त के संपादन) में सुख हो ।

७—माध्वीः नः सन्तु ओषधिः (ऋ १।६०।६)

अर्थ—हमारे लिए अन्न मीठा हो ।

८—पञ्चक्षितीः मानुषीः बोधयन्ति (ऋ ७।७६।१)

अर्थ—मनु की सन्तान पाँचों प्रकार की प्रजा को जगाती हुई उषा उदय होती है ।

९—यत् पांच जन्यया विशा (ऋ ८।५२।६३।७)

अर्थ—जब पाँच जनों (मनुष्यों) वाली प्रजा ने

१०-तेन चाक्लृप्रे ऋषयो मनुष्याः (ऋ १०।१३०।५)

अर्थ-उससे ऋषी और मनुष्य बनें।

११-अग्नेन मनुष्याः ऋषयः समीधिरे (ऋ १०।१५०।४)

अर्थ-अग्नि को मनुष्यों और ऋषियों ने प्रदीप्त किया।

१२-ऋषयः सप्त विप्राः (ऋ ९।९३।२)

अर्थ-मेधावी ऋषि सात हैं।

१३-विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवः (ऋ १।५१।८)

अर्थ-तू आर्यों को और जो दस्यु हैं उनको जानता है।

१४-अहं भूमिम् अददाम् आर्याय (ऋ ४।२६।२)

अर्थ-मैंने आर्य को भूमि दी है।

१५-तिस्त्रः ! प्रजाः आर्याः ज्योतिरग्राः (ऋ ७।३३।७)

अर्थ-चमकते मुखवाली आर्य प्रजायें तीन हैं।

१६-तेने अहं सर्वं पश्यामि उत शूद्रम् उत आर्य्यम्
(अथर्व ४।१०।८)

अर्थ-उस (दान क्रिया) से मैं सबको देखता हूं जो निश्चय शूद्र हैं यह और जो आर्य है।

१७-द्विजाः अह प्रथमजाः ऋतस्य (ऋ १०।६१।१९)

अर्थ-द्विज ही सत्य (ब्रह्म) की पहली सन्तान है।

१८-त्रयो लोकाः समिताः ब्रह्मणेन (अथर्व १२।३।२०)

अर्थ-तीनों लोक एक ब्राह्मण के बराबर है।

१९–भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता (ऋ १०।१०६।४)

अर्थ–ब्राह्मण की स्त्री जिसका उपनयन हुआ हो भयंकर होती है।

२०–धृतव्रताः क्षत्रियाः क्षत्रम् आशतुः (ऋ ८।२५।८)

अर्थ–दृढ़ नियमों वाले क्षत्रिय क्षत्रियतत्त्व को प्राप्त होते है।

तृयोदशो अध्याय

१–अग्निरिव मन्यो ! त्विषितः सहस्व (ऋ १०।८ ।८)

अर्थ–हे मन्यु ! (क्षत्रिय !) अग्नि की नाई प्रज्ज्वलित हुआ शत्रुओं को दबा।

२–अशत्रुं हि जनिता जजान (ऋ १०।२८।३)

अर्थ–जगतपिता ने क्षत्रिय को निश्चय शत्रु रहित उत्पन्न किया है।

३–राजा राष्ट्राणां पेशः (ऋ ७।३४।११)

अर्थ–राजा राज्यों (देशों) का सौन्दर्य्य है।

४–राष्ट्रस्य आधिपत्यम् एहि (१०। २४।५)

अर्थ–देश के साम्राज्यको प्राप्त हो

५–इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं च उभेश्रियम् अश्नुताम्

अर्थ–यह विद्याबल (ब्राह्मण) और बाहुबल (क्षत्रिय) दोनों मिले हुए मेरे ऐश्वर्य (साम्राज्य श्री) को प्राप्त हो

६–शुद्धा भवन्त यज्ञियाः (अथर्व ६।१२२।४)

१६—सा वर्धतां महते सौभगाय (ऋ १।१६४।२७)

अर्थ—वह बड़े सोभाग्य के लिए वृद्धि (पुत्र पौत्र आदि से बढती) को प्राप्त हो

१७—प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे (ऋ १०।१८३।२)

अर्थ—हे पुत्र की कामनावाली ! तू पुत्र पौत्र आदि प्रजा से प्रजावाली हो

१८—अग्निः नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् (ऋ १०।८०।१)

अर्थ—अग्नि वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली और बडी बुद्धि वाली स्त्री देता है ।

१६—अग्निः वीरं श्रुत्यं कर्म निष्ठाम् (ऋ १० ८०।१)

अर्थ—अग्नि विद्वान और कर्म में श्रद्धा वाला वीर पुत्र देता है

२०—मम् पुत्राः शत्रुहणः अथो मे दुहिता विराट्
(ऋ १०।१५८।३)

अर्थ—मेरे घर में शत्रुओ को मारने वाले पुत्र हो और विविध गुणो से चमकने वाली कन्या मेरे घर में हो।

चतुर्दशो अध्याय

१—या पूर्वं पतिं वित्वा अथान्यं विन्दते पतिम्
(अथर्व ६।५।२७)

अर्थ—जो स्त्री पहले एक पति को प्राप्त हो कर पीछे (उस के मरजाने पर) दूसरे पति को प्राप्त होती है

२-समानलोको भवति पुनर्भुवा अपरः पतिः

(अथर्व ६।५।२५)

अर्थ-वह पूर्व के समान लोक व्यवहार वाला होता है जो पून- विंवाह कामा (बाल विधवा स्त्री) के साथ विवाह किया हुआ दूसरा पति हो

३-कस्य मात्रा न विद्यते (यजुः २३।२७)

अर्थ-किसका मुल्य नही है ?

४-गोस्तु मात्रा न विद्यते (यजुः २३।४८)

अर्थ-गौका हा मूल्य नही हो।

५-युनक्त सीरा वि युगा तनध्वम् (ऋ १०।१०।१।३)

अर्थ-हल जोतो जुओं का विस्तार करो

६-सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते (ऋ १०।१०।१।४)

अर्थ-बुद्धिमान हल जोतते हैं। और जुओं का विस्तार करते हैं।

७-न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः (ऋ ४।३३।११ ,

अर्थ-देवता परिश्रमीके विना दूसरे की मित्रता के लिये नही

८-न मृषा श्रान्तं यद् अवन्ति देवाः (ऋ १।१७९।३)

अर्थ-यह मिथ्या नही, जो देवता परिश्रमी की रक्षा करते हैं।

९-यो देवकामो न धना रुणाद्धि (ऋ १०।४२।६)

अर्थ-जो परमात्मा की कामना वाला है वह धन को नहीं रोकता (अदानी नहीं होता) है

१०-ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे (ऋ १०।१०७।२)

अर्थ-जो संगम पर अन्न से भूखों को तृप्त करते है और जो दूसरा दान देते हैं।

११--उरुः कक्षो न गांग्यः (ऋ ६।४५।३१)

अर्थ-गंगा के किनारे की नाई बड़ा महादानी "बृबु" तक्षा (मनु० १०।१०७) का यश है

१२--यमुनायाम् अधि श्रुतम् (ऋ ५।५२।१७)

अर्थ-यमुना के किनारे विख्यात

१३-समुद्रं गच्छ अन्तरिक्षं गच्छ (यजुः ६।२१)

अर्थ-समुद्र में जा, आकाश में जा।

१४-साकं वदन्ति बहवो मनीषिणः (ऋ ८।७३।३)

अर्थ-बुद्धिमान बहुत हुए भी एक बात बोलते हैं।

१५-देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति
(अथर्व १०।८।३२)

अर्थ-देव के काव्य को देख जो न मरता है। न

अर्थ-हे विद्वानों ऐश्वर्यशक्ती परमात्मा ! ही ऐश्वर्यवान है हम उससे (ऐश्वर्यशक्ती परमात्मा से) ऐश्वर्यवान होवें । हे ऐश्वर्यशक्ती परमात्मा ! उस (ऐश्वर्यवान) तुझ को सब ही जगत बारम्बार पुकारता है, हे ऐश्वर्यशक्ति परमात्मा ! वह तू यहां (इस लोक में) हमारा अगुआ हो

१७-प्रातः रत्नं प्रातरित्वा दधाति, तं चिकित्वान प्रतिगृह्या निधत्ते तेन प्रजां वर्धयमानः आयुः रायस्पोषेण सचते सुवीरः (ऋ १।१२५।२)

अर्थ-जो प्रातः (उषाकाल में) धन की कामना से प्रात आने वाले विद्वानों को रमणीय धन देता है, और विद्वान उस रमणीय धन) को लेकर रख लेता (वर्तने में लाता) है । उस (दान) से वह उत्तमवीर (दानकर्त्ता) आयु बढाता हुआ धन की पुष्टि (प्रतिदिन बढती) के साथ प्रजा को (पुत्र पौत्र आदि प्रजा सुख को) सेवता (भोगता) है

१८-सुगुः असत् सुहिरण्यः स्वश्वः बृहद् अस्मै वयः इन्द्रो दधाति यः त्वाऽऽयन्तं वसुना प्रातरित्वो ! मुक्षीजया इव पदिम् उत्सिनाति (ऋ १।१२५।२)

अर्थ-वह अच्छी गौओं वाला अच्छे धनवाला अच्छे घोडो वाला होता है । इन्द्र (परम ऐश्वर्यवान परमात्मा) इसको बडी आयु देता है । जो तुझ आने वाले (आर्थी होकर आने वाले) को हे प्रभात समय आने वाले विद्वान ! फांस (रस्सी) से पशु पक्षी की नई धन से बांध लेता है ।

१-उद्यानं ते पुरुष । नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिकृणोमि आहि रोह इमम् अमृतं सुखं रथम् अथ जिर्विः विद्थम् आव   अथर्व ८।१।६)

अर्थ-हे मनुष्य तेरी उन्नती हो अवनीत न हो मैं बल को तेरे जीने का साधन बनाता हूं । तू निःसन्देह इस अमृत जीवन वाले सुख के साधन शरीर रुपी रथ पर बैठ और जीर्ण (वृद्ध) हुआ अपने ज्ञान को मनुष्य मात्र में कहो

२-जीवतां ज्योतिः अभि+एहि अर्वाङ् आ त्वा हरामि शत शारदाय अवमुञ्चन् मृत्युपाशान अशस्तिं द्राघीयः आयुः प्रतरं ते दधामि (अथर्व ८।२।२)

अर्थ-हे मनुष्य ! तू अपने जीवित पुरुषों (वृद्ध पिता पिता-महों) के अनुभव रुप ज्योति (प्रकाश) को सामने से (सावधानता से) प्राप्त हो मैं तुझे सौ बरस जीने के लिये जगत में लाया हूं । तू मृत्यु की फांसों (रोगों) को और अप्रशस्तता (अस्वच्छता) को दूर छोडता हुआ जीय मै तुझे बहुत लम्बी और बहुत अच्छी आयु देता हूं

३-मा एतं पन्थाम् अनुगाः भीमः एष येन पूर्वं न इयथ तं ब्रवीमितमः एतत् पुरुष ! मा प्रपत्थाः, भय परस्तात् अभयं ते अर्वाक् (अथर्व ८।१।१०)

अर्थ-हे मनुष्य ! तू इस मार्ग से न चल यह बड़ा भयङ्कार है जिस (मार्ग) से कोई (तेरा पूर्व पुरुष कोई) पहले नही चला मैं उसी को तुझे कहता हूं । हे पुरुष यह अन्धकार रुप है मत इस

पर चल, ऐसा करने (न चलने) से भय तेरे पीछे और अभय तेरे सामने (आगे) होगा ।

४–अश्मन्वती रीयते संरभध्वम् उत्तिष्ठत् प्रतरता सखायः अत्रा जहाम ये असन् अशेवाः शिवान् वयम् उत्तरेमाभि वाजान् (ऋ १०।५३।८)

अर्थ–यह पत्थोंवाली (आपदा पर आपदा वाली) संसार रूपी नदी बहती है, हे मित्रों ! तुम एक दूसरे को पकडो उठो और अच्छी तरह तरो । इस तरने में जो (पदार्थ) दुःख के साधन है उनको छोड़े और जो सुख के साधन पदार्थ है, उनको हम सामने रखते हुए पार होवें ।

५–उत्तिष्ठत अवपश्यत् इन्द्रस्य भागम् ऋत्वियम् । यदि श्रातो जुहोतन, यदि अश्रांतो ममत्तन (ऋ १०।१७ ।)

अर्थ–उठो और ऋतु ऋतु में दिये जाने वाले इन्द्र के भाग (हिस्से) को अपने धन मे देखो (जो धन आपके पास है, वह बस आपका ही नही उसमें में इन्द्र के दूसरे पुत्रो का भी भाग है (यह जानो) यदि तयार है दो यदि नही तयार, देनेके लिये उत्साहित होवो

६–शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्सु अषाढ साह्वान पृतनासु शत्रून

होने वाला) तीक्ष्ण शस्त्रों वाला शीघ्र अस्त्र शस्त्र चलाने वाला युद्धों में असह्य आक्रमण करने वाला अनेक योधाओं में शत्रुओं का अभि भव करने वाला और अपने धनों का ठीक ठीक भोगने वाला हुआ देश तथा जाति को पवित्र कर ॥२॥

७-यौ अङ्गिरसम् अवथो यौ अगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निम् अत्रिम यौ कश्यपम् अवथो यौ वसिष्ठं, तौ नो मुञ्चतमंहस
॥१॥ (अथर्व ४।२९।३)

अर्थ-हे मित्र और वरुण जिन आपने अंगिरा की रक्षा की जिन आपने अगस्तिकी जमदग्नि की और अत्रिकी रक्षा की जिन आपने कश्यपकी, जिन आपने वसिष्ठकी रक्षा की वे आप हमको पापसे छुडायें (अलग रक्खें) ॥१॥

८-यौश्यावाश्वम् अवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढम् अत्रिम् यौ विमदम् अवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुंचतमंहस
॥२॥ (अथर्व ४।२९)

अर्थ-हे मित्र और वरुण जिन आपने श्यावाश्व वध्यश्व पुरुमीढ और अत्रि के पुत्रोंकी रक्षा की जिन आपने विमद और सप्तवध्रि की रक्षाकी वे आप हम को पापसे छुडाये (अलग रखे)॥२॥

९-यो भरद्वाजम अवथो यों गविष्ठरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् यौ कक्षिवन्तम् अवथ प्रोत कण्वं तौं नो मुंचतमंहसः
॥३॥ (अथर्व ४।२९।५)

अर्थ-हे वरुण हे मित्र जिन आपने भरद्वाजकी रक्षाकी जिन आपने गविष्टर विश्वामित्र और कुत्सकी रक्षा की जिन आपने

कक्षीवानकी और कण्वकी रक्षा की, वे आप हमको पापसे छुडाये (अलग रखे) ॥३॥

१०–यौ मेधातिथम् अवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणौ उशना काव्यं यौ गोतमम् अवथ प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमं हमः ॥४॥ (अथर्व ४।२६।६

अर्थ–हे मित्र और वरुण जिन आपने मेधा तिथिकी रक्षा की, जिन आपने त्रिशोककी और जिन आपने कविकेपूत्र उशना (शुक्र) की रक्षा की जिन आपने गोतमकी और मुग्दलकी रक्षा की वे आप हमको पापसे छुडाये (अलग रखे)॥४॥

११–यत्र ज्योतिः अजस्त्रं, यस्मिन् लोके स्वर हितम् ।तस्मिन् मां धेहि पवमान, अमृते लोके अक्षिते ॥ (ऋ ६।११२।७)

अर्थ–जिस देश में निरन्तर ज्ञान ज्योति (विद्या प्रकाश) हैं जिस देश में सब सुख (हर प्रकार के सुख का साधन) रखा हुआ (मौजूद है)। हे सब को पवित्र करने वाले उस अमृत(दूध) वाले अखुट अन्न वाले देश में मुझे रख (निवासदे) ॥

१२–यत्र राजा वैवस्वतो यत्र अवरोधनं दिवः। यत्र अमूः यह्वतीः आपः तत्र माम् अमृतं कृधि (ऋ ६।११३।८)

अर्थ–जिस देश में विवस्वान् का पुत्र मनु राजा है जिस देश में सूर्य्य का अपनी अनुकूलता केलिए उपरंध (उपस्थान) होता है। जिस देश में वे (सिंधु, सरयु, सरस्वती यमुना गंगा आदि बड़ी नदिया विद्यामान हैं उस देश में मुझे चिरजीवी कर।

हमारे लिए सुखकारी बीते उषायें (प्रभातें) हमारे लिए सुखकारी उदय हों ॥

१७–अभयं द्यावापृथिवी इह अस्तु नो अभयं सोमः सवित नः कृणोतु । अभयं नो अस्तु उरु अन्तरिक्षं सप्त ऋषिणां च हविषा अभयं नो अस्तु (अथर्व ३।४० १)

अर्थ–यहां द्यौ और पृथिवी से हमको अभय हो चन्द्रमा और सूर्य हमको निर्भय करें। विस्तृत (फैला हुआ) अंतरिक्ष हमारे लिए भयरहित हो सातों मूल गोत्र ऋषियों और सब ऋषियों की भक्तिरूपी हविसे हमको अभय हो ॥

१८–यः आध्राय चकमानाय पित्वो, अन्नवान् सन् रफिताय उपजग्मुषे । स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरा उतो चित् स मार्डितारं न विन्दते (ऋ १०।११७।२)

अर्थ–जो अन्नवाला (धनवान) हुआ अन्न की इच्छावाले विपद् ग्रसित पास आये आंध्र (दरिद्र) के लिए मनको (अपने हृदय) को सख्त करता है और पहले ही अपने आप को सेवता (खालेता है) वह सुखदेने वाले (परमात्मा) को नहीं लभता है ॥

१९–स इद् भोजोयो गृहवे ददाति, अन्नकामाय चरते कृशाय । अरम् अस्मै भवति यामहूतौ, उतापरिषु कृणुते सखायम् ॥ (ऋ १०।११७।३)

अर्थ–वह ही अन्नदाता (भोजनदाता) है जो लेने वाले अन्न की कामना वाले अन्नके लिए फिरने वाले (दरदर डोलने वाले) भूखे

से क्षीण बल (दुर्बल) को देता है। इसके लिए (अन्नदाता के लिए) प्रहर प्रहर में बुलाने वाली संसार यात्रा में प्रत्येक कर्म पूरे फल वाला होता है और यह विरोधी प्रजा में मित्र को बनाता है।

२०–पृणीयात् इत् नाधमानाय तव्यान्, द्राघीयम् अनुपश्येत पन्थाम ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा, अन्यम् अन्यम् उपतिष्ठन्त रायः ॥ (ऋ० १०।११७।५)

अर्थ–धनमान माँगने वाले को अवश्य मन खोलकर दे और अतिलम्बे मार्ग को (शेष आयु के दिनों को) पल पल देखे (दृष्टिगोचर रखे) क्योंकि धन निश्चय रथ के पहियों की नांई घूमते हैं, आज दूसरे को और कल दूसरों को प्राप्त होते हैं ॥

षष्ठदशो अध्याय

१–मोघम् अन्नम् विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वधः इत् स तस्य। न अर्यमणां पुष्यति नो सखायं, केवलाघो भवति केवलादी ॥ (ऋ० १०।१०।६)

अर्थ–वह अज्ञानी व्यर्थ अन्न को लभता (अन्न, को संग्रह करता) है मैं सत्य कहता हूं वह (अन्न का संग्रह) निश्चय उसका नाश (उसके नाश का कारण) है। जो न अतिथि को पुष्ट करता (खिलाता) है और न मित्र (देशबन्धु) को पुष्ट करता है वह अकेला खाने वाला निरापाप है।

२–मो षु वरुण ! मृन्मयं, गृहं राजन् ! अहं गमम्। मृड सुक्षत्र मृडय ॥ (ऋ० ७।८६।६

अर्थ–हे दुःखो को निवारण करने वाले ! हे विश्व के राजा

है। तू ने तप कर स्वर्ग (परलोक) को जीता है। तू तपरूपी साथी से शत्रुओं (भीतरी बाहरी शत्रुओं) को मार (मारकर इस लोक को (जीत) बस ॥१॥

६–भृगूणाम अङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् (यजु० १।१८।) । तद् एतद् ऋचा अभ्यनूक्तम तपसा ये अनाधृष्याः तपसा ये स्वर ययुः । तपो ये चक्रिरे महस् तान् चिद् एवपि गच्छतात् (ऋ० १०।१५४।२) इति ॥२॥

अर्थ—भृगुवंशियो और अङ्गिरावंशियों के तप से ही तुम तपो (अपने पूर्व पुरुषों जैसा तप करो) वह यह ऋचा (मंत्र) से कहा गया है तप से जो न दबाये जाने वाले हुए है तप से जो स्वर्ग (दुःखरहित सुख) को प्राप्त हुऐ हैं। जिन्होने महान् तप (धर्म और देश की रक्षा केलिये उग्रतप) किया है। हे मनुपुत्र। तू भी निःसन्देह उन (अपने पूर्व पुरुषों) के ही पीछे चल (उन जैसा उग्र तप कर) बस ॥२॥

७–शिशुः वै आङ्गिरसः मंत्रकृद् आसीत् । [सः अध्यापयन्] पितृन् पुत्रका इति आमन्त्रयत तं पितरो अब्रुवन् अधर्म करोषि यो नः पितृन् सतः पुत्रका इति आमन्त्रयते ॥१॥ (ताण्ड्य० १३।३।२४)

अर्थ—अंगिरा का पुत्र शिशु निश्चय मंत्र कर्ताओं (मंत्रो की व्याख्या करनेवालों) में अद्वीतीय मंत्रकर्ता (मंत्रों की व्याख्या करने वाला) था। उसने पढाते हुऐ अपने पितरों। ताऊ काका, आदि बडों) को हे पुत्रों। यह कहकर बुलाया। उसको पितरों ने

कहा तू अधर्म करता है, जो हमें अपने पितरहुओं को हे पुत्रों ऐसे कहकर बुलाता है ॥१॥

८—सोऽब्रवीत् अहं वाव पिता, यो मन्त्रकृद् अस्मि इति ॥२॥ (ताण्डय० १३।३।२४)

अर्थ—उस (शिशु) ने यह कहा मैं निःसन्देह पिता हूं क्योकि मंत्रकर्ता (मंत्रों कि व्याख्या करने वाला) हूं ॥२॥

९—ते देवेषुअपृच्छन्त ते देवाः अब्रुवन् एष वाव पिता यो मन्त्रकृद् इति तद् वै सः उदजयत् ॥३॥

अर्थ—उन्होंने (पतरों ने) दुसरे विद्वानों से पुछा । उन विद्वानों ने ऐसे कहा यह निःसन्देह पिता है, जो मंत्रकर्ता है । उससे (दूसरे विद्वानों के कहने से) वह (शशु) निश्चय विजय को प्राप्त हुआ (जीतगया), ॥३॥

१०—अत्र एते श्लोकाः भवन्ति—

अर्थ—यहां ये श्लोक हैं—

११—यः आतृणात्ति अवितथेन कर्णौ अदुःखं कुर्वन् अमृतं सम्प्रयच्छन् । तं मन्येत पितरं मातरं च, तस्मै न द्रुह्येत कतयत् चनाह ॥१॥ (निरु० २।४)

अर्थ—जो सत्य से (सत्यब्रह्म) के प्रतिपादक गुरुमंत्र से) कानो को खोलता है । दुखका अभाव (अविद्यारुपी मृत्यु की निवृति) करता हुआ और विद्यारुपी अमृत देता हुआ । उस गुरु (आचार्य) को पिता और माता माने उससे कोई कुछ भी न द्रोह करे ॥१॥

१२-अध्यापिताः ये गुरुं नाद्रियन्ते, विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा। यथैव तें न गुरोः भोजनीयाः, तथैव तान् न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥२॥ (निरु० २।४)

अर्थ-हे बुद्धिमानों पढाये हुऐ जो ब्रह्मचारी वाणी से, मन से और शरीर की क्रिया (उत्थान आदी क्रिया) से गुरु (आचार्य) का नही आदर करते हैं वे निश्चय जैसे गुरु से पाल नीय (गुरु की कृपा का पात्र) नही होते हैं। वैसे ही गुरु से सुना (पढा) हुआ वह सब (शास्त्र) भी उनका नही पालन करता है, ॥२॥

१३-विद्या ह वै ब्राह्मणम् आजगाम, गोपाय मा शेवधिः ते अहम् अस्मि । असूयकाय अनृजवे अयतायन मा ब्रयाः, वीर्यवती तथा स्याम् ॥३॥ (निरु० २।४)

अर्थ-विद्या निश्चय वेद आदी समस्त विद्याओं के पारंगत विद्वान के पास आई, और आकर कहा मेरी रक्षा कर मैं तेरी निधी (खजाना) हूं असूया वाले (झूठी निन्दा करने वाले) को, जो सरल (ऋजु) नही अर्थात् कुटिल है। उसको और (अजिते न्द्रिय को) मुझे न कहो (न दे), ऐसा होने से मैं तेरेलिये बलवती (शक्तिवाली) हूँगी ॥३॥

१४-यम् एव विद्याः शुचिम् अप्रमतं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम। यः त न द्रुह्येत कतमत् चनाह्ह तस्मै मा ब्रूयाः निधिपाय ब्रह्मन् । ॥४॥ (निरु० २।४।)

अर्थ-जिसको निःसनदेह तू पवित्र (सदाचारी), अप्रमादी,

मेधावी ब्रह्मचर्य से युक्त जाने। और जो तेरे लिये कोई भी कुछ भी न द्रोह करे, उस विद्यानिधि के रक्षक को हे विद्वान्! मुझे कह (दे) ॥४॥

१५–विद्यया तद् आरोहन्ति यत्र कामाः परागताः। न तत्र दक्षिणाः यान्ति न अविद्वांसः तपस्विनः ॥५॥

(शत० १०।७।५।४।१६)

अर्थ– विद्या से उस पद (पदवी) को पहुँचते हैं, जहाँ सब कामनायें (इच्छायें) पूरी हो जाती हैं, न वहाँ दानी पहुँचते हैं और नही वे तपस्वी, जो विद्वान् नही (विद्या से रहित) है ॥५॥

१६–अत्र एतं मन्त्र पठन्ति–इदम् आपः प्रवहत, यत् किं च दुरितं मयि। यद् वा अहम् अभिदुद्रोह यद् वा शेपे उतानृतम् (ऋ० १।२३।२२) इति ॥२॥

अर्थ–यहां इस मन्त्र को पढते (उच्चारण करते) हैं। हे परमात्मा जल इसको बहा ले जाये, जो कुछ भी मुझ में पाप (भीतर बहार का आशौच) हैं। अथवा जो मैंने द्रोह (विश्वासघात) किया है, अथवा जो मैंने बुरा भला कहा है। (गाली दी है) और जो मैंने झूठ बोला हैं। बस ॥२॥

१७–प्राजापत्यो ह वै आरुणिः सुपर्णेयः प्रजापतिं पितरम उपससार किं भगवन्तः! परमं वदन्ति इति ॥

(तै० आ० १०।६३)

अर्थ–प्रजापती (कश्यप) का पुत्र सुपर्णा माता की सन्तान प्रसिद्ध निश्चय आरुणि, प्रजापति पिता के पास गया और यह पूछा है पूज्यो: सब से श्रेष्ट किसको कहते हैं ॥

१८-तस्मै ह वै प्रोवाच प्रजापतिः-सत्येन वायुः आवाति, सत्येन आदित्यः रोचते दिवि। सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठतम्। तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति ॥

अर्थ-उसको निश्चय प्रसिद्ध प्रजापति ने कहा (उत्तरदिया) सत्य से वायु बहता (आता-जाता) है, सत्य से सूर्य द्युलोक (चमकीले आकाश) में चमकता है, सत्य से वाणी की प्रतिष्ठा (आदर) है, सत्य में सब कुछ ठहरा हुआ है (सत्य में ही सब कुछ है) इसलिए सत्य को सब से श्रेष्ठ (बढिया) कहते हैं।

१६-दमेन दान्ताः किल्बिषम् अवधून्वन्ति, दमेन ब्रह्मचारिणः सुवर् अगच्छन। दमो भूतानां दुराधर्षम्, दमे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद् दमं परमं वदन्ति ॥

(तै० आ० १०।६३)

अर्थ-दम से (इन्द्रियों के निग्रह काबु में रखने से) दान्त हुए (इन्द्रियों को काबु में किये हुए) मनुष्य पाप को झाड देते हैं (परे फैंक देते है) दम से ब्रह्मचारी स्वर्ग सुख (स्वास्थ्य सुख) को प्राप्त होते हैं। दम मनुष्यों का दुःसह कर्म है, दम में सब कुछ ठहरा हुआ है (दम में सब कुछ है)। इसलिय दम को सब से श्रेष्ठ कहते हैं।

२०-शमेन शान्ताः, शिवम् आचरन्ति, शमेन नाकं मुनयो अन्वविन्दन्। शमो भूतानां दुराधर्षम्, शमे सर्वं, प्रतिष्ठितम्। तस्मात् शमं परमं वदन्ति ॥ (तै० आ० १०।६३)

अर्थ-शम से (मन के निग्रह से) शान्त हुए (मन को वशमें किये हुए) मनुष्य मंगल रुप (शुभ) आचरण करते हैं, शम से ऋषि

अर्थ–सन्तान उत्पन्न करना निःसन्देह लोक में भली प्रतिष्ठा (प्रतिष्ठा का कारण) है। प्रजातन्तु का विस्तार करता हुआ (सन्तान उत्पन्न करता हुआ) पितरों का अनृणी (ऋण से मुक्त) होता है। वही (सन्तान उत्पन्न करना ही) निश्चय उस (मनुष्य) का ऋण से मुक्त होना है। इसलिए संतान उत्पन्न करने को सब से श्रेष्ठ कहते हैं ॥

४–अग्नि होत्रं सायं प्रातः गृहाणां निष्कृतिः, स्विष्ठं सुहुतं यज्ञक्रतूनां परायणं, सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिः । तस्माद् अग्निहोत्रं परमं वदन्ति ॥ (तै० आ० १०।६३)

अर्थ–अग्निहोत्र सांझ सवेरे किया हुआ घरों की शुद्धि है, अच्छी तरह (यथा विधि) किया हुआ, अच्छी तरह होमा हुआ सब यज्ञों का परला आश्रय है और स्वर्गलोक (स्वर्गसुख) की ज्योति (प्रकाश) है। इसलिए अग्नि होत्र को सब से श्रेष्ठ कहते हैं

५–तपसा देवाः देवताम् अग्रे आयन्, तपसा ऋषयः स्वर् अन्वविन्दन । तपसा सपत्नान प्रणुदाम अरातिः, येन इदं विश्वं परिभूतं यद् अस्ति ॥ (तै० ब्रा० ३।१२।३)

अर्थ–तप (परिश्रम) से देवताओं ने सब से पहले देवतापन को प्राप्त किया, तप से ऋषियों ने स्वर्ग सुख को लभा है। हम उस तप से अपने सब शत्रुओं को जो दाता (यज्ञ कर्ता) नहीं हैं दूर करेंगे (जीतेंगे) जिस तप से यह सब दब जाता है, जो है ॥

६–श्रद्धया देवो देवत्वम् अश्नुते, श्रद्धा प्रतिष्ठा लोकस्य देवी सा नो जुषाणा उप यज्ञम् आगात्, काम वत्सा अमृतं दुहाना ॥ (तै० ब्रा० ३।१२।३)

ब्रह्मणा क्षत्रं निर्मितं, ब्रह्मं ब्राह्मणः आत्मना ॥
(तै० ब्रा० २।८।८)

अर्थ-ब्रह्म (परमात्मा) ने अपने आप से देवताओं को उत्पन्न किया है, ब्रह्म ने अपने आपसे इस सब जगत को उत्पन्न किया है। ब्रह्म ने अपने आप से शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय को बनाया है। ब्रह्म अपने आप से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है।

१२-अन्तर अस्मिन् इमे लोकाः, अन्तर विश्वम् इदं जगत्। ब्रह्म ऐव भूतानां ज्येष्ठम् तेन को अर्हति स्पर्धितुम् ॥
(तै० ब्रा० २।८।८)

अर्थ-इस (ब्रह्म) में भीतर (इस ब्रह्म के भीतर) ये सब लोक हैं, इस ब्रह्म के भीतर (अन्दर) यह सब जगत है। ब्रह्म ही प्राणी अप्राणी सब पदार्थों के मध्य में श्रेष्ट है, कौन उसके साथ स्पर्द्धा (बराबरी) करने योग्य है।

१३-किं स्विद् वनं कः उ स वृक्षः आसीद्, यतो द्यावा-पृथिवी निष्ठतक्षु मनीषिणः ! मनसा पृच्छत इद् उ, तद् यद् अध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ३ ॥

मुझे शरीर (नीरोग शरीर) दे, मुझे प्रतिष्ठा दे, मुझ को अ-दीनता दे और मुझ में मनुष्यपना दे ॥

२०—ब्रह्म मे दाः क्षत्रं मे दाः। तेजो मे धाः, वर्चो मे धाः। यशो मे धाः, तपो मे धाः, मनो मे धाः ॥

(तै० आ० ४।५)

अर्थ—मुझे वेदादि समस्त विद्या दे मुझे क्षात्र बल दे मुझे तेज (शरीरिक कान्ति) दे, मुझे विद्याज्योति दे, मुझे यश दे, मुझे तप (परीश्रम करना) दे मुझे मन (उत्साहित मन) दे ॥

अष्टमदश अध्याय

१—पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, नन्दाम शरदः शतं, मोदाम शरदः शतं, भवाम शरदः शतं, शृणवाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतं, अजीताः स्याम शरदः शतं, ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ (तै० आ० ४।४२)

अर्थ—हे स्वामिन ! (मालिक) हम सौ बरस देखें सौ बरस जीवें, सौ बरस समृद्ध होवें, सौ बरस मुदित (पुत्र पौत्रो के साथ हर्षित) होवें, सौ बरस स्वतन्त्र सत्ता वाले (स्वराज्य वाले) होवें, सौ बरस सुने, सौ बरस बोलें, सौ बरस अजित (किसी से न जीते गये) होवें और चिरजीवी हुए (सौ बरस से अधिक जीवि हुए) हम सूर्य को (निरावरण सूर्य ज्योति को) देखने के लिए होवें ॥

२—याम् ऋषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः, अन्वैच्छन् देवाः तपसा श्रमेण। तां देवीं वाचं हविषा यजामहे, सानो दधातु सुकृतस्य लोके ॥ (तै० आ० २।८।८)

अर्थ-जिस वाणी (वेदमाता) को मन्त्र कर्त्ता बुद्धिमान ऋषियों ने ढूढ पाया है, विद्वानो ने ब्रह्मचर्य रुपी तप से और बुद्धि के निरन्तर परिश्रम से जिस वाणी को प्राप्त किया है। उस देवी (ऐश्वर्यादि की देने वाली) वाणी का श्रद्धा भक्ति रुपी हवि से हम यजन (प्रतिदिन नियम पूर्वक अध्यन) करते हैं, वह हमको सदा शुभ कर्म के लोक में (शुभ-कर्मों के करने में) रखे (प्रवृत्त रखे) ॥

३-स्तुता मया वरदा वेदमाता, प्रचोदयन्ता पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजा पशुं कीर्तीं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं, यह्म दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ (अथर्व १६।७१।१)

अर्थ-मैंने वाँछित फल के देने वाली वेदमाता की स्तुति की है (आदर पूर्वक पढा है), वह द्विजों को पवित्र करने वाली, आयुः प्राण (निरोगजीवन), प्रजा (पुत्र, पौत्र आदि सन्तान) पशु (गौ, घोड़ा, भेड़, बकरी) किर्ति (व्यापक यश) धन तथा विद्या ज्योति (विद्या तेज) को मुझे दे कर प्रेरे कि तुम सब इसलोक का पूर्णसुख (अभ्युदय सुख) भोग कर अन्त में ब्रह्म लोक को (परमात्मा रुपी लोक) को अर्थात मोक्ष को प्राप्त होवो ॥

४-नमः ऋषिभ्यो मन्त्र कृदभ्यो मन्त्र पतिभ्यः । मा माम् ऋषयो मन्त्र कृतो, मन्त्र पतय परादुः, मा अहम् ऋषीन्,

हैं । मत मुझे मन्त्रों के कर्ता, मन्त्रों के रक्षक ऋषि अपने से परे करें, मत मै मन्त्रों के कर्त्ता, मन्त्रों के रक्षक ऋषियों को अपने से परे करु, मत मैं मन्त्रो के कर्त्ता, मन्त्रों के रक्षक ऋषियों को अपने से परे करु ॥

५-सुवर्गाय हि वै लोकाय दर्शपूर्णा मासौ इज्येते ॥१॥

(तै० ब्रा० २।२।५)

अर्थ-स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिये ही निश्चय दर्श और पूर्णमास, दोनों यज्ञ किये जाते हैं ॥१॥

६-एते वै सम्वत्सरस्य चक्षुषी, यद् दर्शपूर्णमासौ । एष वै देवयानः पन्थाः, यद् दर्शपूर्णमासौं । न आमावास्यायां पौर्णमास्यां च स्त्रियम् उपेयात् ॥२॥ (तै० सं० २।४।६)

अर्थ-ये निश्चय बरस की आखें हैं, जो दर्श (अमावस्या) और पूर्णमास है यही निःसन्देह देवयान मार्ग (विद्वानों के चलने का रास्ता) है, । जो दर्श और पूर्णमास है इसलिये न दर्श (आमावास्या) में और न पूर्णमासीयें स्त्री के पास जाय ॥२॥

७-स यो विद्वान् अग्निहोत्र च जुहोति, दर्शपूर्णमासाभ्यां च यजते, मासि मासि ह एव अस्य अश्वमेधेन इष्ट भवति । एतद् उ ह अस्य अग्निहोत्रं च दर्शपूर्णमासौं च अश्वमेधम् अभिसम्पद्येते ॥३॥ (शत० ११।२।५।५)

अर्थ-वह जो विद्वान अग्नि होत्र नाम का हवन करता (अग्नि होत्र करता) है और दर्श पूर्ण मास-यज्ञ भी करता है मास मासमें (महीने महीनेमें) निःसन्देह इसका प्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ किया

गया होता है। यही निश्चय इसके प्रसिद्ध अग्निहोत्र और दर्श पूर्णमास दोनों अश्वमेध यज्ञ हो जाते है ॥३॥

८–तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथग् अर्हाणि कारयाँचकार। स ह प्रातः संजिहानः उवाचः न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो न मद्यपः। न अनाहिताग्निः न अविद्वान्, न स्वैरी स्वैरीणि कुतः। यक्ष्यमाणो वै भगवन्तः! अहम् अस्मि यावद् एकैकस्मै ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद् भगवद्भ्यो दास्यामि, वसन्तु मे भगवन्तः इति ॥

अर्थ–उसने उन पास आये हुओं की निश्चय अलग पूजा कराई। वह दूसरे दिन सवेरे ही सेज को छोड़े हुआ उन से आ कर यह बोला मेरे देश में चोर नही, कंजूस नहीं, शराबी नहीं, । अनाहिताग्नि (प्रतिदिन अग्नि होत्र न करने वाला) नहीं, अविद्वान नहीं, व्याभिचारी नहीं, व्याभि चारिणी कहां से होगी। हे पूज्यनीयों मैं निश्चय यज्ञ करने वाला हूं जितना धन एक एक ऋत्विज (यज्ञ कराने वाले) को दूंगा, उतना आप पूज्यां (हर एक) को दूंगा, आप पूज्य मेरे घर में है ॥

यज्ञ हवन [देवयज्ञ]

प्रथम निम्न तीन मन्त्रों से आचमन करे।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

ॐ अमृतपिधानमसि स्वाहा ॥२॥

ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

*** प्रातः सायं दोनों के मंत्र ***

ॐ भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदंमग्नये प्राणाय इदन्नमम। भुववार्यवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायावेऽपानाय इदन्न मम॥ भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्नमम। ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरो स्वाहा। ॐ या मेधांदेवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविन कुरू स्वाहा। ॐ विश्वानिदेव सवितदु रितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा॥ ॐ अग्नेनय सुपथाराये अस्मान् विश्वानिदेववयुनानिविद्वान। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां तेनम उक्तिविधेम स्वाहा॥ ॐ र्व पूर्ण ॐ स्वाहा॥१।२।३॥

इस प्रकार प्रातः और सायंकाल सन्ध्योपासना के पीछे इन पूर्वोक्त मंत्रों से होम करके अधिक होम करने की जहां तक इच्छा हो वहां तक स्वाहा अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करे।

*** पूर्णमासी की आहुतियां ***

ॐ अग्नये स्वाहा॥१॥ ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा॥२॥ ॐ विष्णवे स्वाहा॥३॥

*** अमापस्या की आहुतियां ***

ॐ अग्नये स्वाहा॥१॥ ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा॥२॥ विष्णवे स्वाहा॥३॥

*** अथः वलिवैश्वदेव यज्ञ विधि ***

निम्न दस मन्त्रों से घृत के पात्र में खांड बूरा या शक्कर को मिलाकर आहुति देवे।